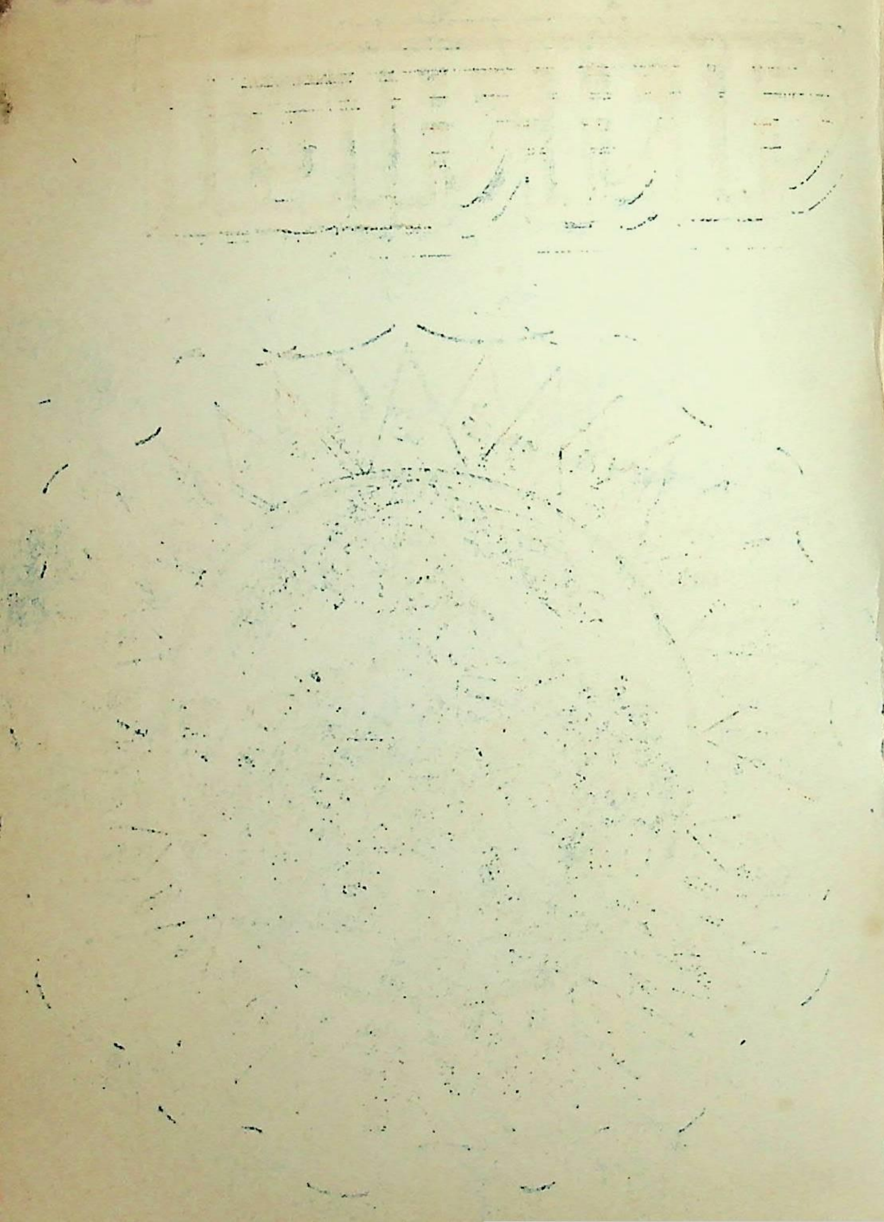
नाम-माला



विनोबा



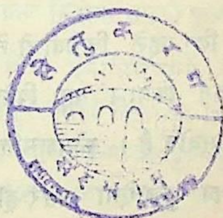
नाम-माला

•

विनोबा

•

प्रकाशक :
सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी-१



चौथी बार : ३०००
कुल छपी प्रतियां : १३,०००
जनवरी, १९९५
मूल्य : पांच रुपये

•

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

देश के लाखों स्त्री-पुरुष विनोबाजी की 'नाम-माला' से परिचित हैं। बाल-वृद्ध सभी इस नाम-माला का नित्य पाठ करते हैं। प्रतिदिन की प्रार्थना में नाम-माला गायी जाती है।

यह नाम-माला ईश्वर के गुणवाचक नामों का स्मरण कराती है और सब धर्मों में समन्वय तथा एकरूपता की सीख देती है।

अभी कुछ दिन पहले विनोबाजी ने छोटे-छोटे बच्चों के सामने इस नाम-माला का विवेचन किया। यह विवेचन जितना गहन-गम्भीर है, उतना ही समझने में सरल-सुबोध है। कोमलमति तथा सरल-निश्छल बालकों के मन पर इस नाम-माला का कुछ ऐसा असर होता है कि वे सारी सृष्टि को एकरूप, साम्यरूप, प्रेमरूप, सत्यरूप समझने लगते हैं। विनोबाजी ने बालकों के बीच बालक बनकर यह तात्त्विक और आध्यात्मिक सीख कितनी सरलता से और अनुपम वार्ताशैली में दी है, यह देखते ही बनती है।

विनोबाजी ने यह विवेचन मराठी में किया था। उसका यह हिन्दी अनुवाद श्री महेन्द्रकुमार जैन ने किया है।

इन नामों पर चिन्तन और उनका एक सुश्लिष्ट भजन उत्तरापथ की यात्रा के दौरान सन् '५२ में हुआ। विनोबाजी का संक्षिप्त स्पष्टीकरण भी अन्त में जोड़ दिया गया है। उसमें इस नाम-माला की रचना का इतिहास भी आ गया है।

पार्श्वभूमि

सन् १९६४ के अप्रैल में कुछ कारणों से विनोवा पवनार आये। वहाँ लग-भग दस दिन का कार्यक्रम था। पर वाद में तो वह हनुमान् की पूँछ की तरह वढ़ता ही गया। शिविर होते थे। सभाएँ होती थीं। पर वहाँ उतने व्यस्त कार्य-क्रम में भी पवनार के वाल-गोपालों ने विनोवा का हृदय आकर्षित किया। आश्रम की सायंकालीन प्रार्थना में पवनार की कुछ मंडली रोज आती थी। उसमें ये वाल-गोपाल भी रहते। कुछ वालक तो इतने नियमित रूप से आते थे कि यदि कभी एकाध चेहरा दिखाई नहीं दिया तो तत्काल विनोवा उसकी पूछताछ करते।

इन वालकों की कुछ भी अपेक्षा नहीं थी। इसीलिए उन्हें निष्काम वृत्ति और नियमित रूप से की गयी प्रार्थना का मधुर प्रसाद मिला। किसीको कल्पना नहीं थी। दिनांक १ जुलाई १९६४ को यह व्याख्यान-माला शुरू हुई। प्रतिदिन उसमें नया-नया रंग जमने लगा। विनोवा द्वारा नाम-माला पर दिये हुए ये पहले ही प्रवचन हैं। एक-एक व्याख्यान दस-दस, वारह-वारह मिनट का होता था। उनमें थोड़ा, पर समग्र चिन्तन प्रकट हुआ है।

विनोवा के प्रवचन अनेक प्रकार के श्रोतृसमुदाय के सामने हुए हैं। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, मालिक-मजदूर, डॉक्टर-रोगी, मिशनरी-राजनेता आदि अनेक प्रकार के श्रोताओं की एकत्र और स्वतन्त्र सभाएँ विनोबा के निकट हुई हैं। परन्तु इस नन्हीं सभा का वैशिष्टय यह था कि इस सभा में अपने श्रोता स्वयं विनोबा ने चुने थे। और इसीलिए इन प्रवचनों में विनोबा की स्वाभाविक वृत्ति प्रकट हुई है। संसार विनोबा को आचार्य कहता है, पर विनोबा अपने-आपको प्राथमिक शिक्षक कहते हैं। उनका यह प्राथमिक शिक्षक का काम, उनकी विद्यार्थी-अवस्था से आज तक सतत चालू है। ये प्रवचन यानी नयी तालीम के आचार्य

द्वारा लिया गया प्राथमिक वर्ग ही था। इस वर्ग में ८-९ वर्ष से १२-१३ साल तक के बालक थे।

कभी मंदिर के प्रशस्त सभा-मंडप में तो कभी मंदिर के सामने की खुली जगह में शिक्षक और विद्यार्थी जमीन पर ही पास-पास बैठते थे। श्रोता बहुत थे, पर विनोबा की दृष्टि इस वानर-सेना पर ही केन्द्रित रहती थी। विनोबा छोटे-छोटे वाक्य बोलते और बीच में एकाध सूचक प्रश्न पूछ लेते। बालक इतने एकाग्र रूप से सुनते थे कि प्रश्नों के उत्तर उन्हें चटपट मिलते थे। बिलकुल गिनती के सवाल, पर उनसे बच्चों के मस्तिष्क को चालना मिलती थी। प्रवचनों में कभी नामघोष होता, कभी तालियों की ध्वनि होती, कभी नाम-स्मरण के साथ विनोबा और बालक नाचने लगते तो कभी सुन्दर विनोद होने पर बच्चे पेट पकड़कर हँसते। इस प्रकार का स्वाभाविक क्रीडामय वातावरण था।

इन प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने के प्रयत्न के पीछे यह विचार है कि नयी तालीम के वे वर्ग, वानर-सभा का वह सुन्दर दृश्य पाठकों की दृष्टि के सामने ज्यों का त्यों रखा जाय और उन्हें सभा में उपस्थित रहने जैसा आनन्द मिले। इसके सिवा यह भी विचार है कि नयी तालीम के शिक्षकों को नयी तालीम के वर्गों का आदर्श नमूना देखने को मिले।

इस नाम-माला का परिचय कराने की आवश्यकता अब नहीं रही है। नाम-माला का अन्तर्भाव आश्रम की प्रातः और सायं-प्रार्थना में हुआ है। विनोबा प्रार्थना को स्नान, भोजन और निद्रा की उपमा देते हैं। स्नान से शरीर की शुद्धि होती है। आरोग्यदायक भोजन से शरीर को पोषण मिलता है और गाढ़ निद्रा के बाद मनुष्य को उत्साह मिलता है, ताजगी आती है। प्रार्थना से मन की शुद्धि होती है, मन निर्मल होता है, मन को पोषण मिलता है, आध्यात्मिक उत्साह मिलता है, शान्ति मिलती है। मनुष्य के शरीर और मन को स्नान, भोजन और निद्रा तीनों बातों की प्रतिदिन आवश्यकता रहती है।

तुकाराम कहते हैं—**'नसे तरी मनीं नसो, परी वाचे तरी बसो'**—मन में

न रहे, तो न रहे, पर कम-से-कम वाणी में तो राम-नाम रहे। हमारे सन्तों ने इतना नाम-माहात्म्य गाया है। और वे अव्याहत गाते ही जाते हैं। अधिक नहीं, तो कम-से-कम दोनों समय की प्रार्थना में तो नाम-माला द्वारा हमें उसका लाभ मिलता है।

उपनिषदों में भी नाम-स्मरण को स्थान दिया गया है। मैत्रायणी उपनिषद् में भगवान् के ५-२५ नाम मिलते हैं। उनमें कुछ नाम शंकरवाचक हैं, कुछ विष्णुवाचक हैं, कुछ सूर्यवाचक हैं। भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम एकत्र किये हैं। महाभारत में व्यास ने विष्णु के सहस्र नाम लिखे हैं। उनमें 'सिद्धार्थः जैसे भी नाम हैं। शंकराचार्य ने 'पंचायतन पूजा' शुरू की। यह सब भिन्न-भिन्न पंथों और उपासनाओं को एकत्र लाने के प्रयत्न दीखते हैं। शंकराचार्य के समकालीन आचार्य हरिभद्र ने अपने 'षड्दर्शनसमुच्चय' और 'योगदृष्टिसमुच्चय' में सभी दार्शनिक सिद्धान्तों और सभी साधना-पद्धतियों का समन्वय किया है। नाम-माला में भी विनोबा ने मुख्यतः समन्वय को ही दृष्टि रखी है। इसे अन्तिम प्रयत्न कहा जायगा। आज का युग विश्वव्यापक है और इसीलिए इस अन्तिम प्रयत्न में सारे विश्व के नाम आना स्वाभाविक है।*

२५-३-'६५
ब्रह्म-विद्या-मन्दिर
परंधाम, पवनार

---

* मराठी पुस्तक की पार्श्वभूमि का अनुवाद।

अनुक्रम

नाम-माला

ॐ तत् सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू ।
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू ।।
ब्रह्म मज्द तू यह्व शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू ।
रुद्र विष्णु तू, राम कृष्ण तू, रहीम ताओ तू ।।
वासुदेव गो-विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू ।
अद्वितीय तू, अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू ।।

आरम्भ

[धाम नदी का किनारा। किनारे से थोड़ी दूर ऊँचाई पर लाल रंग का आश्रम–ब्रह्म-विद्या-मन्दिर। ब्रह्म-विद्या-मन्दिर के चौगान में भरत-राम-मन्दिर। शाम को छह बजे का समय। मन्दिर में प्रार्थना समाप्त होने पर बाबा नित्य की भाँति अपनी कुटी में नहीं गये। अपने आसन पर वैसे ही बैठे रहे। आसपास थे सब बाल-गोपाल—गाँव के बालक। बाबा मंद स्वर से गुनगुना रहे थे–"ॐ तत् सत् श्री नारायण तू"। बालक उत्सुकतापूर्वक बाबा के मुँह की ओर देख रहे थे। अचानक बाबा ने बोलना शुरू किया—]

हम रोज प्रार्थना में जो नाम-माला बोलते हैं, उसमें ३६ नाम हैं। समर्थ रामदासस्वामी कहते हैं—"**चोविसनामी सहस्रनामी अनन्तनामी तो अनामी**" ईश्वर के नाम कितने ? संध्या में ईश्वर के चौबीस नाम हैं। 'विष्णुसहस्रनाम' में हजार नाम हैं। पर ईश्वर के नाम अनंत हैं। और इतने नाम होने पर भी वह अनामी है। उसका नाम ही नहीं। यानी क्या ? परमेश्वर अन्तर्यामी है। उसे विवेक से पहचानना है।

सब धर्मों में नाम-माहात्म्य गाया गया है। इसलाम-धर्म में ईश्वर के ९९ नाम माने गये हैं। उनकी जप की माला में ९९ मणियाँ होती हैं। मुझे लगता है कि पारसी लोग ईश्वर के २४ नाम लेते हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् का सबसे सरल नाम हरि है। दो अक्षरों का नाम। राम-भक्त कहते हैं कि राम-नाम के सामने कोई नाम टिक नहीं सकता। परन्तु सब नाम समान शक्तिशाली हैं।

मनुष्य के लिए ईश्वर का एक ही नाम काफी है। ऐसी बात नहीं है कि इतने सारे पचास नाम लेते रहने चाहिए या 'विष्णुसहस्रनाम' के हजार नाम बोलने ही चाहिए। पर मनुष्य को गुणचिन्तन करना होता है। और ईश्वर के एक नाम से सब गुणों का चिन्तन करना मनुष्य की

विशेष सामर्थ्य (करतबगारी) पर अवलम्बित है। परन्तु भिन्न-भिन्न नाम होते हैं, तो वे नाम भिन्न-भिन्न गुणों को जोड़ते हैं। इसलिए ये जो ईश्वर के नाम हैं, उनके लिए कहा गया है—**'यानि गौणानि नामानि'**।

गौण यानी क्या ? जिसका महत्त्व कम वह गौण, ऐसा हम कहते हैं। परन्तु यहाँ 'गौणानि' का अर्थ गुणवाचक है। अर्थात् ये नाम गुण-वाचक, गुणों का सूचन करनेवाले हैं। एक-एक नाम एक-एक गुण के लिए है। हमने ३६ नाम ढूँढ़े, तब ये सब गुण देखे और भिन्न-भिन्न समाज ने उन नामों को प्रेमपूर्वक लिया है। इसलिए उन्हें एकत्र किया। उन नामों को एकत्र करने पर हम सब धर्मों के निकट होते हैं। ये नाम सबको एक जगह लाते हैं।

अब यह बगीचा है। उसमें देखो। अनेक प्रकार के वृक्ष तुम्हें दिखाई देते हैं। जैसे अनेक वृक्षों का यह बगीचा है, वैसे ही ये ३६ नाम हैं। विभिन्न प्रकार के वृक्ष एकत्र आने पर शोभा बढ़ती है।

मैं अनेक वर्षों से भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की उपासना करता आया हूँ। जिस समय जिस धर्म की उपासना चलती थी, उस समय उस धर्म के खास-खास नामों का ही चिन्तन करता था। अनेक धर्मों और संस्कृतियों की उपासना मेरे मन में चलती रहती थी। परन्तु १४ वर्ष पहले मैं हृषीकेश से हरिद्वार जा रहा था, तब मार्ग में काली कमलीवालों ने मुझे एक चन्दन की मणिमाला भेटस्वरूप दी। इस प्रकार की माला का मैंने बहुत कम उपयोग किया है। तकली और चरखे का मेरे लिए माला जैसा उपयोग हुआ। उनसे मेरे चित्त की तुरन्त एकाग्रता होती है। तथापि उन्होंने मुझे माला दी ही थी, इसलिए रात्रि को सोते समय उसे मैं अपने पास रखता था। उसके साथ कुछ चिन्तन भी चलता था। भक्त-मंडली को जो नाम भाये, उनमें से मैंने कुछ नामों का चयन किया और नाम-माला तैयार हुई। इसकी खूबी यह है कि सब धर्मों का इसमें समावेश हुआ है।

ॐ तत् सत्

[संध्या के समय छह बजे भरत-राम-मन्दिर में प्रार्थना समाप्त हुई। सब लोग पंक्ति में बाबा के सामने बैठे थे। पहली दो-तीन पंक्तियों में बच्चे थे। बाबा ने प्रवचन शुरू किया।]

कल हमने देखा कि भगवान् के ३६ नाम हैं। वे नाम हम रोज लेते हैं न ?

जी !

कब लेते हैं ?

—प्रार्थना में।

भगवान् का पहला नाम क्या है ?

—ॐ।

ॐ यह एक संस्कृत शब्द है। केवल अक्षर नहीं है। अक्षर तो है ही, पर उसके सिवा शब्द भी है। हिन्दी में ॐ शब्द का अर्थ होता है 'जी हाँ'। ॐ का अर्थ क्या ?

—जी हाँ।

यह जो 'जी हाँ' है, उसे संस्कृत में 'ॐ' कहते हैं। पहले हम साबरमती-आश्रम में थे। वहाँ प्रार्थना के समय हमारी हाजिरी होती थी। एक-एक नाम पुकारते थे—गोपालभाई ! फिर गोपालभाई क्या कहते ? ॐ कहते। 'हाजिर हूँ' शब्द के बदले हम 'ॐ' कहते थे। तुम भी अपनी पाठशाला में यह शुरू कर सकते हो। नाम लिया कि क्या कहेंगे ?

—ॐ।

ॐ अर्थात् अनुकूल होना। किसीने पूछा—भोजन के लिए आओगे क्या, तो तुरन्त हाँ कहना चाहिए। अर्थात् अनुकूल हैं। परन्तु समझो

किसीने पूछा कि काम के लिए आयेंगे क्या, तो क्या 'नहीं' कहोगे ? वहाँ भी अनुकूल होना है। नहीं तो भोजन के लिए 'हाँ' और काम के लिए 'ना'।

(सब बच्चे हँसने लगे)

ऐसा नहीं करना चाहिए। किसी भी बात के लिए 'हाँ' ही कहना चाहिए। 'विष्णुसहस्रनाम' में भगवान् का नाम आता है—'अनुकूलः शतावर्तः'। भगवान् सबके अनुकूल होता है और सौ बार दौड़कर आता है। सबके अनुकूल होता है यानी क्या ? जो जैसा होता है, उसके लिए वैसा अनुकूल होता है। और उसे पुकारते हैं तो वह सौ-सौ बार दौड़कर आता है। वह वैकुण्ठ में रहता है। फिर भक्त उसे पुकारते हैं। प्रह्लाद ने पुकारा, तो प्रह्लाद के लिए आया। द्रौपदी ने पुकारा तो द्रौपदी के लिए आया। नरसिंह मेहता ने पुकारा तो नरसिंह मेहता के लिए आया। तुकाराम ने पुकारा तो तुकाराम के लिए आया। नामदेव ने पुकारा तो नामदेव के लिए आया। जो भक्ति से पुकारता है, उसके लिए वह आता ही है। इसलिए 'विष्णुसहस्रनाम' में नाम लिया गया **"अनुकूलः—शतावर्तः"**।

परन्तु लोग उसे बुलाते ही नहीं। वे मित्र को बुलाते हैं, भाई को बुलाते हैं, समधी को बुलाते हैं, दामाद को बुलाते हैं, परन्तु भगवान् को नहीं बुलाते। क्योंकि उन्हें भय है कि वह हमें कैसे अनुकूल होगा ? हमारे काम में कैसे अनुकूल होगा ? हमें पड़ोसी के खेत का धान्य लूटना होता है, झगड़ा करना होता है, तब हमें वह कैसे अनुकूल होगा ? परन्तु यदि भक्ति से पुकारते हैं, अच्छे काम के लिए बुलाते हैं तो वह दौड़कर आता है, ऐसा सब भक्तों का अनुभव है। इसलिए भगवान् का नाम है ॐ। मैंने आज यहाँ बहनों से कहा कि किसी काम के लिए बुलाने पर 'ना' न कहें, 'हाँ' कहें। यानी भगवान् का नाम लें।

भगवान् का दूसरा नाम है 'तत्'। तत् शब्द भी संस्कृत है। तत् यानी वह। वह, उधर, बहुत दूर है। (हाथ से दूरी दिखाई) वह दूर रहता है। क्या वह ऐसी गन्दगी में रहेगा ? हम पद-यात्रा करते हैं। तब क्या होता है ? गाँव पास आया कि नाक दबाने लगते हैं। बदबू आने लगती है। क्या ऐसी जगह पर भगवान् रहेगा ? इसलिए वह उधर, उस पार, परले पार है। **"हरि निर्मळ आणि मळ माझिये हृदयीं"** हरि निर्मल है और मेरे हृदय में मल है। फिर हरि वहाँ कैसे आयेगा ? तुलसीदास भी ऐसा ही कहते हैं।

घर पर मामूली मेहमान आनेवाला हो, तब भी हम घर साफ करते हैं, फिर भगवान् आये, ऐसा यदि लगता हो तो क्या घर में गन्दगी रहने देंगे ? वह गन्दगी में नहीं रहेगा। इसलिए उसका नाम रखा 'तत्'।

तीसरा नाम है 'सत्' यानी सचाई, खरापन। जहाँ सचाई होगी, वहाँ भगवान् रहेगा। तुकाराम से एक बार किसीने पूछा कि हरि कैसे मिलेगा ? इस पर तुकाराम ने कहा—**"खरें बोले तरी, फुकासाठी जोडे हरि।"** तुम केवल सच बोलो तो हरि मिलेगा। पर यह सरल उपाय छोड़कर तुम दूसरे उपाय करते हुए यात्रा करते हो। तरह-तरह के उपाय करते हो। ऐसा करना भगवान् को दूर ढकेलना है। पर तुम सचाई बरतोगे तो भगवान् तुम्हारे पास आयेगा। सत्य ही सुखमय उपाय है।

इसलिए ये तीन नाम लेकर भक्त भक्तिपूर्वक जप करते हैं –

ॐ तत् सत्

[बोलते-बोलते हाथों से तालियाँ बजने लगीं। तालियों के साथ 'ॐ तत् सत्' का घोष होने लगा। सामने बैठे बच्चों से बोले, बोलो रे बोलो–ॐ तत् सत्। बच्चे भी घोष करने लगे। तालियाँ बजाने लगे। कुछ ही क्षणों में रंग जम गया। सारी मंडली धुन में तल्लीन हो गयी।]

श्री नारायण

[कल की सारी मंडली प्रार्थना में हाजिर थी। प्रार्थना समाप्त होते ही सब चटपट अपनी-अपनी जगह बैठ गये। पहली पंक्ति के बच्चों की ओर बढ़कर बाबा हँसे और प्रवचन शुरू किया।]

कल हम नाम-माला देख रहे थे। तीन नाम हमने देखे। कौन-से तीन नाम ?

—ॐ तत् सत्।

ॐ यानी क्या ?

—'जी हां'। 'हाँ' कहा जाय। 'ना' नहीं कहना चाहिए।

ॐ यानी अनुकूल होना। मेरा कुछ भी नहीं है। सब तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारे अनुकूल हूँ। तत् यानी अलिप्त। सबके अनुकूल है, फिर भी अंतर्याम से अलिप्त है। इसीलिए वह अनुकूल हो सकता है। अलिप्त न होने पर एक को अनुकूल होता है तो दूसरे को प्रतिकूल होता है। पर वह तो निर्लिप्त है। और सत्य है। इसके बाद दो नाम आते हैं। वे कौन-से ?

—श्री नारायण।

'श्री' ईश्वर का नाम है। वह हम हमेशा लेते हैं। पत्र लिखते समय श्री से शुरुआत करते हैं। श्री यानी शोभा। यह शोभा प्रकृति में सर्वत्र है। क्या हम अपने जीवन में कहीं शोभा ला सकेंगे ? ला सकेंगे। अब क्या यहाँ श्री है ? हाँ है। यहाँ इतनी मंडली जमा है तो कोई इस कोने में, कोई उस कोने में, कोई पाँव पसारकर, कोई उस ओर मुँह फेरकर बैठे होते, तो क्या उसमें शोभा आती ? सब अच्छी तरह व्यवस्थित बैठे हैं तो शोभा है, श्री है। एकाध व्यवस्थित और स्वच्छ बगीचा है

तो उसमें शोभा है। इसका अर्थ क्या ? 'श्री' व्यवस्था और स्वच्छता से आती है। स्वच्छता और व्यवस्था दोनों मिलकर शोभा बनती है। वह ईश्वर का लक्षण है।

दूसरा नाम है 'नारायण'। वह मनुष्य से जुड़ा हुआ है। नर से नारायण शब्द बना है। नर अर्थात् ले जानेवाला, नेता। मनुष्य सारी सृष्टि का नेता है। सारे जानवर, आसपास की सृष्टि मनुष्य के हाथ में है। मनुष्य यानी नेता, ले जानेवाला। और नारायण यानी नर-समुदाय। अब यहाँ देखो, लगभग सौ आदमी हैं। यह एक समुदाय है। इस समुदाय में जो ईश्वर का रूप है, उसे नारायण कहते हैं। नर-समुदाय में रहनेवाला देव (ईश्वर) नारायण है। उसी प्रकार हरएक के हृदय में ईश्वर है ही। परन्तु जहाँ समाज इकट्ठा हुआ, वहाँ नारायण है।

मनुष्य का समुदाय चाहिए तो स्वच्छता चाहिए, व्यवस्था चाहिए। समुदाय है, पर स्वच्छता और व्यवस्था नहीं तो 'श्री' नहीं है। स्वच्छता और व्यवस्था है, पर अकेला ही मनुष्य है, तो 'नारायण' नहीं है। इसलिए समुदाय चाहिए और स्वच्छता और व्यवस्था चाहिए। यानी 'नारायण' और 'श्री' दोनों चाहिए।

●

पुरुषोत्तम गुरु

३६ नामों में से हमने पाँच नाम देखे। कौनसे ?

—ॐ तत् सत् श्री नारायण।

आज और दो नाम देखें। **'पुरुषोत्तम गुरु'**। लोग अपने बेटे का नाम पुरुषोत्तम रखते हैं। पुरुषोत्तम यानी सब पुरुषों में उत्तम। पुरुष यानी स्त्री-पुरुष दोनों। अनेक लोग समझते हैं कि पुरुष वह, जिसे हम आदमी कहते हैं। पर वह ठीक नहीं है। पुरुष यानी आत्मा और उत्तम यानी परमात्मा।

हमारे आसपास, सब जगह इतने आदमी रहते हैं, स्त्रियाँ रहती हैं, परन्तु ऐसा पुरुष नहीं मिलेगा कि जिसमें दोष न हों। ऐसा भी कोई नहीं मिलेगा कि जिसमें गुण न हों। दुर्जन मनुष्य में भी गुण होते हैं; और कितना ही बड़ा महापुरुष हो, उसमें दोष रहते ही हैं। दोष शरीर के साथ लगे होते हैं। जिसमें दोष का लेशमात्र नहीं, जो दोषरहित है, गुण-सम्पन्न है, ऐसा कौन है ? परमेश्वर है। इसलिए उसका नाम रखा पुरुषोत्तम।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में यह नाम आया है।

'यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥'

वेद भी उत्तम कहते हैं और लोग भी उत्तम कहते हैं। दोनों ने भी उत्तम क्यों कहा ? वह क्षर और अक्षर से बड़ा है। क्षर यानी जड़-सृष्टि और अक्षर यानी चेतन-सृष्टि। उन दोनों के परे परमात्मा है। इसलिए वेदों ने भी उत्तम नाम दिया और लोग भी उत्तम कहते हैं।

उसके बाद और एक नाम कहा 'गुरुः'। भगवान् पूर्ण गुणमय और सर्वथा दोषरहित है, इसलिए गुरु है। हमारे शिक्षक होते हैं; उन्हें हम क्या कहते हैं ?

—गुरुजी।

वे हमें ज्ञान देते हैं, इसलिए हम उन्हें गुरु कहते हैं। किसीसे हमें एकआध गुण मिलता है तो वह भी हमारा गुरु है, ऐसा कहने में हर्ज नहीं। पर गुरु यानी कौन ? गुरु कैसा हो ? सर्वगुणसम्पन्न और दोष-रहित गुरु होना चाहिए। ऐसा गुरु मिलता नहीं है। इसलिए गुरु का स्थान खुला रखा जाय। प्रत्येक से गुण लिया जाय।

भागवत में कहा है कि अवधूत के २८ गुरु थे। वे कौन-कौन थे ? छोटे-छोटे कीड़े भी उनके गुरु थे। हाथी को भी गुरु माना था और चींटी

को भी गुरु माना था। अर्थात् जिस किसीसे भी वह कुछ सीखता था, उसे गुरु मानता था। हम भी सबको गुरु समझें। परन्तु एकमात्र गुरु परमपुरुष परमेश्वर है। उसके लिए वह स्थान रिक्त रखा जाय। वह जब आयेगा, तब उस स्थान में उसकी स्थापना की जाय। उसका दर्शन कब होगा, कहा नहीं जा सकता। उसका दर्शन लेना है, तो वैसी योग्यता चाहिए। इसलिए ऐसी भावना रखना पर्याप्त है कि गुरु जब कभी मिलेगा, तब उसकी स्थापना उस रिक्त जगह पर करें। शिष्य की योग्यता प्राप्त हुई कि गुरु मिलेगा ही। शिष्य की योग्यता चाहिए यानी क्या चाहिए ? श्रद्धा चाहिए, भक्ति चाहिए।

लोग समझते हैं कि गुरु के बिना रहेंगे, तो मोक्ष नहीं मिलेगा। फिर कोई छोटा सा मंत्र कहता है, और वह उस आधार पर रहता है। लेकिन उससे काम नहीं चलता। मंत्र देनेवाले को गुरु समझकर जो सच्चा गुरु है, उसे स्वयं होकर टालते हैं। इसलिए वह स्थान रिक्त रहने दिया जाय। अपनी श्रद्धानुसार निर्दोष मनुष्य मिल जाय तो गुरु माना जा सकता है। अन्यथा वह स्थान रिक्त रख परमेश्वर के प्रति हम शिष्य के समान बर्ताव करें।

●

सिद्ध बुद्ध

कल पहली पंक्ति समाप्त हुई। आज दूसरी पंक्ति। इस पंक्ति में छह नाम हैं। कौन-से नाम हैं, बताओ, देखें—

—सिद्ध बुद्ध स्कन्द विनायक सविता पावक।

इनमें से आज पहले दो नामों पर हम विचार करें। 'सिद्ध, बुद्ध'। सिद्ध यानी जिसे सधा है। हम कहते हैं न कि काम सध गया। यानी काम बन गया। तब साध लिया यानी पूर्ण हुआ। सिद्ध अर्थात् जो पूर्ण हुआ। और बुद्ध यानी जागा हुआ।

संसार में असंख्य लोग रहते हैं। बारह घंटे सोते हैं। बारह घंटे जागते हैं। पर कुल मिलाकर सोते ही रहते हैं। बुद्ध यानी जागा हुआ। यानी उसने संसार का स्वरूप जान लिया। वह जिसने जान लिया, वह सोता नहीं रहेगा। ये दो शब्द यानी दो बड़ी परम्पराएँ हैं!

गौतम बुद्ध की जो परम्परा है, उसका नाम बुद्ध है। महापुरुष कैसा होना चाहिए? बुद्ध होना चाहिए। यानी जगा हुआ होना चाहिए। दूसरी है जैन-परम्परा। उनका शब्द है सिद्ध। महापुरुष कौन? जो सिद्ध है यानी जो पूर्ण है। भारत में जो जैन पंथ था, वह संयम-प्रधान था। जीवन में मनुष्य को अपना मन नियंत्रित करना चाहिए, इन्द्रियाँ नियंत्रित करनी चाहिए। यह उनका मुख्य विचार है। और बुद्ध की परम्परा मुख्यतः करुणा की परम्परा थी। प्राणीमात्र के प्रति करुणा होनी चाहिए। इन नामों के पहले हम नारायण-पुरुषोत्तम नाम देख चुके हैं। वे दोनों नाम हम वैदिक परम्परा से बोलते हैं। भारत में बहुत प्राचीन काल से तीन बहुत बड़ी परम्पराएँ चलती आयी हैं। हम जिसे हिन्दू कहते हैं, वह है वैदिक परम्परा। उनका मुख्य लक्षण भक्ति है। वैदिकों ने भक्ति का विकास किया। बौद्धों ने करुणा का विकास किया। जैनों ने संयम का विकास किया। इन तीनों परम्पराओं ने मिलकर देश में बहुत बड़ा काम किया। इन परम्पराओं में अनेक महापुरुष, योगी और संन्यासी हुए और वे सारे भारत में घूमे।

यहाँ ये जो मूर्तियाँ मिली हैं, वे वैदिक परम्परा की हैं। इस आश्रम से थोड़ी दूर, रास्ते पर गौतम बुद्ध की मूर्ति है। बुद्ध की ऐसी मूर्तियाँ सारे हिन्दुस्तान में मिलती हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और उधर असम तक मिलती हैं। हम अक्राणी महाल में यात्रा कर रहे थे। वहाँ भी ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं। उस भाग में शिक्षा, संस्कार कुछ भी नहीं है। वहाँ भी बुद्ध की मूर्ति मिली है। इतने परित्यक्त, वीरान प्रदेश में भी बुद्ध का सन्देश पहुँचा था। बौद्धों का भारत पर और भारत के

बाहर भी बहुत बड़ा उपकार है। चीन, जापान, ब्रह्मदेश, लंका सब जगह यह संदेश पहुँचा था। और सब जगह करुणा की बहुत बड़ी धारा फैली थी।

जैनों ने संयम सिखाया। संयम के साथ अहिंसा सिखायी। जैन-परम्परा मुख्यत: श्रमण-परम्परा यानी संयम-परम्परा समझी जाती है। जैन साँप को भी नहीं मारते। गांधीजी के आश्रम में भी साँप को नहीं मारते थे। क्या तुम साँप को मारते हो ?

—हाँ, मारते हैं।

तुम मारते हो, हम भी मारते हैं, सभी मारते हैं। पर हम अपने आश्रम में नहीं मारते थे। ये साँप खेत में अनेक जन्तु खाते हैं। साँप मार डालने पर खेतों में इतने कीड़े होंगे कि वे खेतों को ही खा जायेंगे। साँप कीड़े खाते हैं, इसलिए वे परोपकारी हैं। यहाँ ये भाऊ साहब (भाऊ पानसे) बैठे हैं न, वे साँप को पकड़ते हैं। साँप को पकड़कर दूर खेत में छोड़ दिया कि बस। मारने की आवश्यकता नहीं, वे कोई हमें डसते नहीं हैं। सभी साँप विषैले नहीं होते। यह सारी जैन-परम्परा है कि प्राणी को न तो मारा जाय और न उससे डरा जाय। ऐसी ये तीन परम्पराएँ हैं। कौन-सी तीन परम्पराएँ ?

(बालक चुप थे)

साँपों को नहीं मारा जाय, यह कौन-सी परम्परा ?

—जैनों की।

सब प्राणियों के प्रति करुणा किसने कही ?

—बौद्धों ने।

भक्ति का विकास किसने किया ?

—वैदिकों ने।

भक्ति, करुणा और संयम ऐसी ये तीन परम्पराएँ हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से हैं। गीता में भक्त के लक्षण कहे हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः

इसमें भक्ति का उल्लेख है, संयम का उल्लेख है, दया-मैत्री का उल्लेख है। तीनों की सीख एकत्र की है।

स्कन्द विनायक

कल हमने सिद्ध-वुद्ध देखे। आज हम·········

[बाबा स्तब्ध रहे। बच्चों ने वाक्य पूरा किया।—'स्कन्द विनायक देखें']

'स्कन्द' एक संस्कृत शब्द है। वह परमेश्वर का विशेषण है। स्कन्द यानी खंडन करनेवाला। देवों का सेनापति स्कन्द माना गया है। गीता मे भगवान् कहते हैं—'**सेनानीनामहं स्कन्दः**'। यानी सेनापतियों में मैं स्कन्द (श्रेष्ठ) हूँ। भगवान् का यह रूप—आजकल जिसे हम सरकार का डिफेन्स विभाग यानी संरक्षण-विभाग कहते हैं, वह ईश्वर का यह विभाग—स्कन्द है। और विनायक यानी गणपति, जिसे आजकल शिक्षा-विभाग कहते हैं।

स्कन्द यानी बड़ा पराक्रमी। उपनिषद् में कहानी है। सनत्कुमारों का नाम स्कन्द है। सनत्कुमार महाज्ञानी हो गये। उन्होंने नारद को ज्ञान दिया। नारद सनत्कुमार के पास गये और कहा कि मुझे ज्ञान दीजिये। सनत्कुमार बोले—'तुम तो बहुत सीखे हो, तुम्हें क्या ज्ञान दिया जाय ?' नारद बोले—

"ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद अथर्वणश्चतुर्थ इतिहास पुराणः पंचमो

वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या।"
यह सब मैं सीखा हूँ।—इसमें ब्रह्मविद्या आयी है, पर वह ब्रह्मविद्या यह नहीं है, जिसके लिए यह ब्रह्म-विद्या-मन्दिर स्थापित हुआ है। उस ब्रह्मविद्या का अर्थ ब्राह्मणों का शास्त्र है। इतना ज्ञान होने पर भी अंतःकरण को शांति नहीं। अंतःकरण का शोक नहीं मिटा। तब हे सनत्कुमार, आप यह सिखाइए कि शोक के पार कैसे जाया जाय। सनत्कुमार बोले—'तुमने अभी तक जो कुछ सीखा, वह सब शब्द है, शाब्दिक विद्या है।' अन्त में सनत्कुमार ने नारद को आत्मज्ञान दिया और संसार के भय से मुक्त होकर नारद निवृत्त हुए, कृतार्थ हुए।
"मृदितकषायाय तमसः परं पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः।"
सनत्कुमार ने उस नारद को, जिसके सब कषाय नष्ट हो गये थे यानी चित्त शुद्ध हो गया था, अँधेरे के उस पार प्रकाश का किनारा दिखाया। इसलिए सनत्कुमार का नाम स्कन्द रखा गया। क्योंकि वह संसार का खंडन करता है। संसार-ताप का खंडन करनेवाली भगवान् की शक्ति को स्कन्द कहते हैं।

ज्ञान देनेवाली भगवान् की शक्ति को विनायक कहते हैं। दक्षिण भारत में स्कन्द की उपासना की जाती है और गणपति की उपासना सारे भारत में की जाती है। उत्तम शिक्षा देने पर अन्दर से रक्षा होती है। राष्ट्र संकट में नहीं रहता। और उस पर भी संकट आया तो स्कन्द काम करता है। इस प्रकार इन दोनों शक्तियों के मिलने से काम होता है। इसलिए दोनों नाम एक जगह आये। कल हमने एक जोड़ी देखी। कौन-सी ?

—सिद्ध, बुद्ध।
दूसरी जोड़ी आज देखी। वह कौन-सी ?
—स्कन्द, विनायक।

सविता पावक

[आज गरमी कुछ अधिक थी। बाबा प्रार्थना के लिए नित्य के अनुसार भरत-राम-मन्दिर में न बैठकर बाहर के खुले आँगन में ही बैठे। बाबा को वहाँ बैठे देखकर सब बालक उन्हींके सामने आकर बैठे। प्रार्थना समाप्त हुई। अस्तोन्मुख सूर्यबिम्ब की ओर देखकर बाबा बोलने लगे।]

'सविता पावक तू।' सूर्यनारायण को सविता कहते हैं। वह मनुष्य को प्रेरणा देता है। किसान से कहता है, 'उठ, काम में लग।' पक्षियों से कहता है, 'उठो, गाना गाओ'। फिर कोई कुछ, कोई कुछ, भिन्न-भिन्न काम करने लगते हैं। सूर्य के आने पर तुम उठते हो कि नहीं?

—हाँ, उठते हैं। (सब बच्चों ने एक साथ उत्तर दिया)

तो सूर्यनारायण प्रेरणा देता है। सूर्यनारायण और क्या करता है?

(उत्तर नहीं)

क्यों रे, सूर्यनारायण क्या करता है? वह तुम्हें क्या देता है?

—प्रकाश देता है।

सूर्यनारायण प्रकाश देता है। फिर उसका उपयोग अपनी-अपनी इच्छानुसार किया जाय। तुम्हें प्रकाश का सदुपयोग करना हो तो सदुपयोग करो, दुरुपयोग करना हो तो दुरुपयोग करो। वह केवल प्रकाश देता है। उस प्रकाश में तुम्हें अच्छा काम करना हो तो अच्छा करो, खराब करना हो तो खराब करो। प्रकाश देने के सिवा वह तुम्हारे काम में हस्तक्षेप नहीं करता है। वह सबका सेवक है। वह दरवाजे के पास आकर खड़ा रहेगा। प्रातःकाल उसकी किरणें तुम्हारे दरवाजे के पास आयेंगी। दरवाजा बन्द होगा तो वह धक्का देकर अन्दर नहीं आयेगा। यदि तुम उठोगे और दरवाजा खोलोगे तो वह अन्दर आयेगा। पर

दरवाजा बन्द होगा तो वह बाहर खड़ा रहेगा। वह यह नहीं कहेगा कि तुम दरवाजा नहीं खोलते हो तो मैं लौट जाता हूँ, यानी वह नम्र सेवक है। और क्या तुम्हें पता है कि वह कहाँ रहता है?

—आकाश में। (एक स्वर में सब बोल पड़े)

आकाश में रहता है यानी ऊँचा, अलिप्त रहता है। ज्ञानदेव ने कहा है, **"भानुबिंब पहा निर्मळ निराळ"** निर्मल यानी जिसमें मल नहीं है। निराळ यानी बिलकुल अलग, अलिप्त। कुछ लोग सूर्य के उपासक होते हैं। हमारे देश में भी हैं और बाहर भी हैं। देखो न, हम उसे सूर्यनारायण कहते हैं। नारायण का नाम देते हैं। और उसे ईश्वर समझते हैं। प्रातः-काल किसान हल उठाता है, सूर्य उगने पर उसे नमस्कार करता है और फिर अपने काम में लग जाता है। उससे किसान के जीवन में मिठास आती है और वह निष्ठापूर्वक बर्ताव करता है। इसलिए परमेश्वर की कृपा होती रहती है। यह हुआ एक नाम।

दूसरा नाम है 'पावक'। पावक यानी अग्नि। घर में प्रवेश करते ही अग्नि चाहिए। ठंढ हो तो अग्नि चाहिए। रसोई बनानी हो तो अग्नि चाहिए। यानी अग्नि साक्षात् सेवक है। सूर्य तुम्हारा भात नहीं पका-येगा। अग्नि जो सेवा करती है, वह सूर्य नहीं करेगा और सूर्य जो सेवा करता है, वह अग्नि नहीं करेगी। अग्नि तुम्हारे हाथ में है। कैसे, जानते हो?

—नहीं।

तुम्हारी जेब में दियासलाई रहती है। उसमें अग्नि रहती है। अग्नि को जेब में रखने की यह युक्ति निकाली है। सूर्य तुम्हारे हाथ में नहीं है। सूर्यनारायण सेवा करता है, पर वह स्वामी है। हम आग जब चाहे सुलगा सकते हैं। अग्नि हमारा सखा है, भाई है। सूर्य प्रभु है। अग्नि से कहोगे कि 'घर जला', तो वह घर जलायेगी। कहोगे कि 'रसोई बना', तो रसोई बनायेगी। जैसा कहोगे, वैसा करने के लिए वह तैयार होगी।

मान लो, कल तुम्हें कुबुद्धि हुई और तुमने अग्नि से आग लगाने के लिए कहा, तो वह आग लगायेगी। फिर आग लगायी, इसलिए तुम पकड़े जाओगे। तुम्हें अदालत में ले जायेंगे, तुम कहोगे, 'मैंने आग नहीं लगायी, अग्नि ने लगायी।' अग्नि कहेगी, 'मैं जिम्मेदार नहीं, मुझसे कहा, इसलिए मैंने आग लगायी।' तब न्यायाधीश उसकी बात मानकर तुम्हें दंड देगा। मतलब, अग्नि तुम्हारी सेवक है। यदि परमेश्वर ही सेवक बनकर घर आये तो क्या कहा जाय! इसलिए अग्नि को भ्राता कहा गया है। वेद में एक जगह कहा गया है, 'तू पुत्र है, तू पिता है, तू भाई है।' यानी वह घर का सदस्य हुआ। वह मृत्युपर्यन्त तुम्हारे काम आनेवाला है। इसीलिए पहले के ऋषि अग्नि के उपासक थे। आज पारसी लोग अग्नि के उपासक हैं।

ब्रह्म-मज्द

[बाबा ने न बोलते हुए संकेत से ही पूछा—'क्या ?' बच्चे बोल उठे—'ब्रह्म-मज्द']

ब्रह्म और मज्द दो अलग-अलग नाम हैं। ब्रह्म को तो हिन्दुस्तान के सब लोग जानते हैं। इस आश्रम का नाम 'ब्रह्म-विद्या-मन्दिर' है। यहाँ बन्धु-भगिनी ब्रह्म की उपासना करते हैं। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। हममें है, सृष्टि में है, पहाड़ में है। सर्वत्र ब्रह्म है, ऐसा समझकर ये लोग सबके साथ समान व्यवहार करने का अभ्यास करेंगे। वह उन्हें कितना सधता है, यह अभी कहा नहीं जा सकता। परन्तु उनकी वैसी प्रतिज्ञा है।

ब्रह्म सर्वत्र है। जहाँ पोलापन दीखता है, वहाँ भी है। ठसाठस भरा हुआ है। उसका साक्षात्कार हो गया, तो फिर क्या पूछना ? **"आनन्दाचे डोहीं आनन्द तरंग"** आनन्द के दह में आनन्द की तरंग। फिर आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं रहेगा।

ब्रह्म-जिज्ञासा, ब्रह्म-विद्या ये सब शब्द ब्रह्म शब्द से आये हैं। ब्राह्मण शब्द भी ब्रह्म से आया। आज ब्राह्मण एक जाति हो गयी। वह ब्रह्म को नहीं जानता। परन्तु मूल कल्पना ऐसी नहीं है। पहले ब्रह्म की उपासना करनेवाला, ब्रह्म को जाननेवाला ब्राह्मण होता था। ब्रह्म परमेश्वर का एक नाम है।

दूसरा नाम है मज्द। मज्द नाम तुममें से किसीने नहीं सुना है। ब्रह्म सबके द्वारा सुना हुआ नाम है और यह न सुना हुआ नाम। यह पारसी लोगों का शब्द है। पारसी लोग पहले ईरान में रहते थे। फिर उनकी मुसलमान लोगों के साथ लड़ाई हुई। मुसलमानों ने उन्हें सताया, बहुतों को मार भी डाला। तब उनमें से कुछ लोग वहाँ से भागकर डोंगियों में बैठकर हिन्दुस्तान आये। जानते हो डोंगी किसे कहते हैं? छोटी नाव को डोंगी कहते हैं। उन डोंगियों में बैठकर वे लोग यहाँ आये और तब से सतत १२०० साल से यहाँ हैं। लाख-सवा लाख लोग हैं। पारसी भारत में आये और हमने उन्हें जगह दी।

पारसियों में बहुत-से महात्मा हुए हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान में परोपकार के अनेक काम किये। दादाभाई नौरोजी बहुत बड़े देश-भक्त थे। वे पारसी थे। तुममें से किसीने उनका नाम नहीं सुना होगा। जैसे महात्मा गांधी, पंडित नेहरू थे, वैसे दादाभाई नौरोजी थे। वे कांग्रेस के प्रारम्भिक अध्यक्षों में से थे। उनके बाद लोकमान्य तिलक आये। उसके बाद महात्मा गांधी, गांधी के बाद पंडित नेहरू और बाद में तुम बच्चे।

जैसे हमारा वेद है, वैसे उनका अवेस्ता है। उनके परमेश्वर का नाम है—'अहुर मज्द'। यों केवल मज्द ही है। पर वे 'अहुरा मज्दा' कहते हैं। कैसे कहते हैं?—

[पांच-सात बार कहकर जोरों से उच्चारण करके बताया]

अब तुम सबको मेरे साथ-साथ बोलना है—

अहुरा मज्दा

—अहुरा मज्दा

मज्दा अहुरा

—मज्दा अहुरा

[तालियाँ बजाकर सबने पांच-दस मिनट तक जोर से उच्चारण किया। विनोबा पूरी तरह तल्लीन थे। बच्चों ने तो उनके स्वर में स्वर मिलाया ही था, पर और सारी मंडली भी—लगभग सौ व्यक्ति—भजन में तल्लीन थी।]

हम 'विठोबा रखुमाई' कहते हैं, वैसे ही वे 'अहुरा मज्दा' कहते हैं। अहुर यानी असुर। संस्कृत में असुर यानी राक्षस। परन्तु पारसी भाषा में असुर यानी देव। और मज्द यानी महान्। और अहुर यानी क्या ?

—देव

मज्द यानी क्या ?

—महान्

यानी उसका अर्थ हुआ महादेव। वह भगवान् का नाम है। हमारे हिन्दुस्तान में आर्य हुए, उनके देव (ईश्वर) का नाम ब्रह्म है। और उनके बन्धु, पारसी ईरान में रहते थे। उनके देव का नाम मज्द। इस नाम का हमने अभी उच्चारण किया। वह अब घर जाकर अपनी माँ को सिखाओ। भूलोगे तो नहीं ?

—नहीं भूलेंगे।

कैसा उच्चारण करोगे ?

—अहुरा मज्दा—मज्दा अहुरा—

यह्वशक्ति

[प्रार्थना का समय हो गया था। परन्तु बच्चों से प्रार्थना करानेवाले महादुभाऊ अभी तक आये नहीं थे। फिर बाबा ने बातचीत शुरू की। उन्होंने बच्चों से पूछा : 'क्यों रे, कल का नाम याद है न?' बच्चों ने उत्साहपूर्वक कहा : 'हाँ, याद है।' फिर क्या था। 'अहुरा मज्दा' का ताल-स्वर पर घोष शुरू हुआ। महादुभाऊ के आने पर ही घोष समाप्त हुआ।]

कल हमने भगवान् के 'ब्रह्म' और 'मज्द' दो नामों का विचार किया। आज 'यह्व' और 'शक्ति' इन दो नामों पर विचार करेंगे। उनमें 'शक्ति' नाम हमारे देश का ही है। परन्तु 'यह्व' नाम ज्यू लोगों का है। हम उन्हें यहूदो कहते हैं। जानते हो, वे लोग कहाँ रहते हैं?

--नहीं।

क्या यहूदी लोगों को तुमने देखा है?

--नहीं।

पवनार के बच्चे यहूदी लोगों को कैसे देखेंगे? ज्यू लोग सारे संसार में फैले हुए हैं। हमारे हिन्दुस्तान में भी हैं। यहाँ पवनार में तो नहीं, पर बम्बई की ओर पाये जाते हैं।

अनेक वर्षों पहले, ईसवी सन् के पूर्व—अर्थात् दो हजार वर्षों के पहले वे भारत में आये। उन्हें बेनिइसराईल कहते हैं। मेरा जन्म कुलाबा जिले में हुआ है। उस जिले में अनेक बेनिइसराईल लोग हैं। हमारे भूदान के काम में भी कुछ लोग हैं। ये लोग मुख्यतः व्यापार करते हैं। उनके देव (ईश्वर) को अंग्रेजी में 'जुहोवा' कहते हैं। परन्तु यहूदी 'यहोवा' कहते हैं। हम यमुना लिखते और जमुना कहते हैं। यह भी वैसा ही है। यह 'यहोवा' शब्द हमारे वेद का है। ऋग्वेद में 'यह्व' नाम है। यहूदी लोगों को वह मालूम नहीं। एक बार एक भाई मेरे

पास आया था। फिलस्तीन (पॅलेस्टाइन) का था। वहाँ यहूदी लोग रहते हैं। उसने मुझसे कहा कि लोग ईश्वर के अनेक नाम लेते हैं। पर हमारे ईश्वर का नाम कोई नहीं लेता। मैंने उससे कहा कि मैंने आपके ईश्वर का नाम लिया है—'यह्व शक्ति तू'। सुनकर वह बोला, हाँ भाई ! है हमारे देव का नाम। हम उसे यहोवा कहते हैं। हम लोग एक कोने में रहते हैं। हमें कौन पूछता है। पर हम कम हैं तो भी आपने हमारा खयाल रखा।

वेद में 'यह्व' शब्द का अर्थ होता है जवान, तरुण। परमेश्वर तरुण है, यह कल्पना है। यदि वह वृद्ध हुआ तो फिर मर भी जायगा। परमेश्वर सदैव तरुण है, उत्साह से भरा है। अब यहाँ अनेक तरुण लोग बैठे हैं। उन्हें समझना चाहिए कि ईश्वर सदैव आराध्य है। लोग तरुणावस्था में ईश्वर को भूल जाते हैं और वृद्धावस्था में याद करते हैं। परन्तु युवावस्था में ईश्वर को भूलना नहीं चाहिए। यह्व यानी सदा तरुण, तरोताजा, दुर्बल नहीं, मजबूत। **"युगें अठ्ठावीस उभा विटेवरी"** कैसा है ? अट्ठाईस युग बीत गये। खड़ा है। दुर्बल होता तो क्या वह खड़ा रह सकता था ? पर वह, 'तुम कभी भी आओ, मैं उद्धार करने के लिए तैयार हूँ" यह कहते हुए खड़ा है। ऐसा परमेश्वर सदैव बलवान् रहता है। परमेश्वर का वह नाम यहूदी लोग लेते हैं। यह मधुकर यहाँ बैठा है, बम्बई रहता है। उससे पूछो। उसने अनेक यहूदी लोग देखे होंगे। बम्बई में सब प्रकार के लोग हैं। मुसलमान, बोहरी, यहूदी, पारसी, गुजराती। बम्बई शहर में ४० लाख लोग रहते हैं। यानी कितना बड़ा ? तुममें से क्या किसीने बम्बई देखी है ?

हमारा यह पवनार है न, उससे वर्धा शहर बड़ा है। पर सारा वर्धा जिला उससे भी बड़ा है। ऐसे छह वर्धा जिले मिलकर एक बम्बई होता है। बम्बई में एक-एक घर में हजार-हजार लोग रहते हैं। इतनी

वडी वम्बई है। वहाँ यहूदी लोग रहते हैं और वे भगवान् का यहोवा नाम लेते हैं।

दूसरा नाम शक्ति है। वह अपने यहाँ का नाम है। एक है काली, चंडी। वह बाघ पर खड़ी है। एक है महिषासुरमर्दिनी। उसके पास भैंसा है। और उस भैंसे को वह भाले से मारती है। ये सब शक्ति-देवियाँ हैं।

पूर्वकाल में हिन्दुस्तान में जंगल थे। अभी जंगल नहीं रहे। फिर भी आज दण्डकारण्य बाकी है। पहले वह भी बहुत बड़ा था। उधर मथुरा से इधर नासिक तक सब जंगल ही जंगल था। और इतना घना जंगल था कि वन्दर इस वृक्ष से उस वृक्ष पर कूदते हुए मथुरा से ठेठ नासिक तक जाते थे। इसीलिए बन्दरों को संस्कृत में शाखामृग कहते हैं। इतना घना जंगल था। आजकल यद्यपि हमें बड़े-बड़े शहर दीखते हैं, तथापि उस समय मनुष्यों को रहने के लिए जंगल साफ करने पड़ते थे। वह एक काम ही हो गया था। हरएक को करना पड़ता था। जंगल काटने जाते थे, तो उनमें भयंकर जानवर रहते थे। वे तकलीफ देते थे। उनसे अपना बचाव करने के लिए लोग भगवान् की प्रार्थना करते थे। इसलिए उस देव को नाम दिया शक्ति। शक्ति को देवता माना। फिर जंगल काटे गये। जमीन हाथ में आयी। उस समय जिनके हाथ जमीन आयी, वे लोग जमींदार हुए। फिर वे जमीन दबा बैठे। पर अब सारी जमीन गाँवसभा के हाथ में जानेवाली है। प्रत्येक गाँव ग्रामदान होगा। पृथ्वी परमेश्वर की है। इसलिए जमीन पर सबकी मालिकी है।

शक्ति को परमेश्वर माननेवाले लोगों को शाक्त कहते हैं। बंगाल में शक्ति के उपासक शाक्त लोग बहुत हैं। शंकर के उपासकों को शैव कहते हैं, विष्णु के उपासकों को वैष्णव कहते हैं।

ईशु पिता प्रभु

[बाबा पांव पर ताल देकर कुछ गुनगुना रहे थे। उन्होंने शान्त बैठे हुए बालकों को देखा और बालक जोर से—ईशु पिता—बोल पड़े।]

हमारे यहाँ अनेक महापुरुष हो गये। ज्ञानदेव, कबीर इत्यादि। उसी तरह उधर फिलस्तीन (पॅलेस्टाइन) में एक बहुत बड़े महापुरुष हो गये। उनका नाम ईशु ख्रिष्ट था। जैसे हम लोग राम को अवतार मानते हैं, कृष्ण को अवतार मानते हैं, वैसे वे लोग ईशु—ईसा को अवतार मानते हैं। लोगों ने उन्हें बहुत तंग किया। अन्त में उन्हें कीलें ठोंककर मार डाला। कभी-कभी लोग ऐसे मूढ़ बन जाते हैं। महापुरुषों की बात उनकी समझ में नहीं आती, इसलिए लोग उन्हें त्रास देते हैं। हमारे यहाँ भी ज्ञानदेव, तुकाराम इत्यादि सन्तों को त्रास दिया गया। वैसे ही ईसामसीह को कीलें ठोंककर मार डाला। परन्तु उसके बाद करोड़ों लोग उनके भक्त हुए। यूरोप में जितने राष्ट्र हैं, वे सब ईसाई हैं। हिन्दुस्तान में भी करोड़-सवा करोड़ लोग ईसाई हैं।

जो धर्म संसार में इतना फैला, उस धर्म ने क्या सिखाया ? मनुष्य-मात्र की सेवा करना और दुर्जनता का प्रतिकार सज्जनता से करना। कोई कहता है, 'मैं तुझे मारता हूँ', तो उससे कहा जाय, 'मार, जितना मारना हो, उतना मार। मैं न तो हाथ उठानेवाला हूँ और न तुम पर क्रोध करनेवाला हूँ।' कोई तुम्हें मारने के लिए आया और तुम भगे, तो तुम डरपोक बन गये। परन्तु न भागकर और बदले में न मारकर यह कहा जाय, 'मार, तेरी इच्छा की बात है। मैं मार खाता हूँ।' न मैं मारूँगा, न क्रोध करूँगा। प्रेम ही करूँगा। ऐसा महसूस होना चाहिए।

[बाबा पाँच मिनट स्तब्ध रहे। बालकों की ओर देखते रहे। बालक हँसने लगे। बाबा भी हँसने लगे।]

इन्हें लगता है कि ऐसे कैसे मार खायी जाय ? एकाएक हिम्मत नहीं होगी, पर वैसा प्रयत्न करना चाहिए। हमने क्रोध नहीं किया, शान्त रहे, तो मार-मारकर उसके हाथ दुखने लगेंगे। हम क्या करेंगे ? मारते नहीं, क्रोध करते नहीं, शान्ति से नाम-स्मरण करते हैं—'जयजय राम-कृष्ण-हरि' एक प्रहार हुआ। 'जयजय राम-कृष्ण-हरि' दूसरा प्रहार हुआ। 'जयजय राम-कृष्ण-हरि' तीसरा प्रहार हुआ। इस प्रकार मनुष्य करने लगे, ईश्वर का नाम लेने लगे, तो मारनेवाला थक जायगा।

एक बार क्या हुआ ? वाल्मीकि थे। उन्होंने इतनी बड़ी रामायण लिखी। रामायण में क्या है ?

—राम की कथा।

इतनी बड़ी रामायण लिखनेवाले वाल्मीकि पहले क्या करते थे ? डाका डालते थे। रास्ते से जाने-आनेवाले लोगों को लूटते और मारकर खा जाते थे। यह उनका धन्धा था। एक बार नारद उस रास्ते से जा रहे थे। नारद के हाथ में सदैव वीणा रहती थी। वे 'रामकृष्णहरि' जप करते आ रहे थे। तब वह वाल्मीकि, वह लुटेरा, राहजन नारद को मारने दौड़ा। नारद शान्त थे। वाल्मीकि को आश्चर्य हुआ कि यह न भागकर ही जाता है, न मुझे मारने दौड़े आता है। ऐसा कैसा यह आदमी है। यह कोई तीसरे ही ढंग का दीखता है। वह नारद के सामने स्तब्ध खड़ा रहा। नारद ने उससे पूछा—'तुम लोगों को मारकर क्या करते हो ?'

'पकाकर खाता हूँ। पत्नी पकाती है।'

'ऐसा करने से पाप लगता है न ?'

'हाँ, लगता है।'

'फिर ऐसा क्यों करते हो ?'

'गृहस्थी के लिए।'

'तुम घर जाकर अपनी पत्नी से पूछकर आओ कि मैं लोगों को

मारता हूं और तुम पकाती हो, तो उस पाप का आधा भाग क्या तुम ग्रहण करोगी ? तुम पूछकर आओ, तब तक मैं यहाँ ठहरा हूँ।'

वह घर गया और पत्नी से पूछा। पत्नी बोली, 'मैं क्यों भागीदार बनूँगी। तुम ज्वार लाओगे तो मैं भाकरी (ज्वार की रोटी) बनाऊँगी। तुम गेहूँ लाओगे तो मैं फुलके बनाऊँगी। तुम मनुष्य मारकर लाते हो, तो मैं उन्हें पकाती हूँ। मुझे कैसा पाप ?' यह सुनने पर उसकी आँखें खुलीं। पत्नी के लिए मनुष्यों को मारता रहा। पर वह पाप का हिस्सा लेने के लिए तैयार नहीं। उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह नारद के पास आया और बोला, 'मेरे हाथों बहुत पाप हुआ। अब मैं क्या करूँ ?' नारद बोले, 'घबराओ मत, प्रभु की शरण जाओ। फिर तुम कितने ही पापी होगे तो भी तुम्हारा उद्धार होगा।' फिर उसने ईश्वर-स्मरण किया और उसका उद्धार हुआ। कितने ही दिनों के पापी को पश्चात्ताप होने पर सुधरने के लिए क्षणभर भी नहीं लगता। मान लो कि कहीं अन्धकार है और तुम वहाँ लालटेन लेकर जाओगे तो अन्धकार मिटेगा या नहीं ?

—हाँ, मिटेगा।

वैसे ही ईश्वर की भक्ति होने पर मनुष्य के सब पाप एक क्षण में नष्ट हो जायेंगे। नारद मार खाने के लिए तैयार हुए, इसलिए वाल्मीकि का इतना परिवर्तन हुआ। अनेक लोग तो ऐसे होते हैं कि यदि हिम्मत-पूर्वक उनके सामने खड़े रहें, तो वे नहीं मारते। एक था राक्षस। आज मैं तुम्हें कहानी ही सुनानेवाला हूँ।

(सब बच्चे हँसने लगे)

उस राक्षस ने एक आदमी को पकड़ा। और दिनभर वह उसे काम बताने लगा। काम करते-करते आदमी थक गया और बोला कि अब मैं आराम करूँगा। तब राक्षस ने कहा कि काम कर, नहीं तो मैं तुझे खा जाऊँगा। आदमी डर गया और काम करने लगा। राक्षस उसे

क्षणभर भी चैन से नहीं बैठने देता था। निरन्तर भय दिखलाने लगा। अन्त में आदमी तंग आ गया और बोला कि खाना हो तो खा ले, मैं काम नहीं करूँगा। पर राक्षस ने उसे खाया नहीं। उसे तो काम करने के लिए आदमी चाहिए था। इसलिए उसने उसे नहीं खाया। यानी क्या हुआ? आदमी ने भय छोड़ा, इसलिए राक्षस ने उसे नहीं खाया।

ईशु ख्रीष्ट ने यही सिखाया। डरना नहीं और सामनेवाले मनुष्य को डराना नहीं। यह बात लोगों की समझ में नहीं आयी। इसलिए उसे उन्होंने पकड़ा और कीलें ठोंककर मार डाला। और उसने क्या कहा? उसने कहा, हे भगवन्! ये लोग अज्ञानी हैं, इन्हें क्षमा कर। ऐसा वह महापुरुष हो गया।

वह ईश्वर को पिता कहता था। ज्ञानदेव ने भी परमेश्वर को 'बाप'—पिता—कहा है। वे कहते हैं, '**बापरखुमादेवीवरु**'। इसलिए यहाँ 'ईशुपिता' आया। यानी ईशू—ईसा ने जिसे पिता माना, वह ईश्वर।

दूसरा नाम है 'प्रभु'। प्रभु यानी प्रभावशाली, परमेश्वर, लोकस्वामी, विश्व का स्वामी, एक पक्षी है, जिसे हम (मराठी में) 'भूरी' कहते हैं। हिन्दी में होला कहते हैं। वह सतत चिल्लाता है। क्या चिल्लाता है? हमारे पवनार के लोग कहते हैं, वह चिल्लाता है—पोट दूऽऽऽखते, पोट दूऽऽऽखते, पोट दूऽऽऽखते। (पोट दुखतें = पेट दुखता है।)

[बाबा के द्वारा उच्च स्वर से ताल-स्वर पर 'पोट दूऽऽऽखते' कहने पर हँसी की प्रचण्ड बाढ़ उमड़ पड़ी। देर तक नन्हे-मुन्नों की यह सभा हँसी से प्रफुल्लित रही। बाबा ने बच्चों से भी दो-चार बार यह शब्द दोहरा लिया। बच्चों ने बाबा की हूबहू नकल की।]

परन्तु वह चिल्लाता है 'प्रभूऽऽऽतू', 'प्रभूऽऽऽतू', 'प्रभूऽऽऽतू', बंगाली लोग कहते हैं, वह चिल्लाता है 'ठाकूऽऽऽरजी', 'ठाकूऽऽऽरजी', 'ठाकूऽऽऽरजी।'

[सभा समाप्त हुई। बाबा कुटिया में गये। पर मन्दिर का चौगान बहुत देर तक 'पोट दूऽऽऽखते' और 'ठाकूऽऽऽरजी' की किलकिलाहट से गूँजता रहा।] ●

रुद्र विष्णु

[तुकाराम से पूछा, 'कितने लोग हैं यहाँ ?' तुकाराम ने गिनकर बताया, '१८२'। बाबा बोले, 'ठीक गिनती की है न ? इस प्रकार रोज गिना करो।']

आज हम ईश्वर के किन नामों का विचार करनेवाले हैं ?

—रुद्र विष्णु।

भगवान् रुद्र है। और वही विष्णु भी है। रुद्र यानी कौन ? और विष्णु यानी कौन ? दोनों एक ही भगवान् हैं, पर नाम अलग-अलग। भगवान् भिन्न-भिन्न काम करता है, इसलिए उसे भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं। एक आदमी खेत में काम करता है, इसलिए उसे किसान कहते हैं। वही आदमी पाठशाला में काम करता होगा तो वही शिक्षक भी होगा। किसान भी वही और शिक्षक भी वही। वैसे ही भगवान् का भी है। भगवान् अनेक काम करता है, उसके अनेक गुण हैं, इसलिए उसके अनेक नाम हैं।

रुद्र सफाई करता है। अस्वच्छ, अमंगल—सारी गन्दगी—साफ करता है। रुद्र यानी अमंगल हटा देनेवाला। विष्णु यानी मंगल बढ़ानेवाला। हम खेत में निराई करते समय घास-पात आदि कूड़ा निकाल डालते हैं और पौधों की जड़ में मिट्टी डालते हैं। हमारे चित्त में बुरी वासनाएँ होती हैं और अच्छी वासनाएँ होती हैं। बुरी वासनाओं को हटा देने का काम रुद्र करता है और अच्छी वासनाओं को बढ़ाने का काम विष्णु करता है। खराब वासनाएँ कौन हटाता है ?

—रुद्र।

अच्छी वासनाएँ कौन बढ़ाता है ?

—विष्णु।

बुरी वासनाएँ निकाल डालना यानी उनका निरोध करना। और अच्छी वासनाएँ बढ़ाना यानी अच्छी वासनाओं का विकास करना। निरोध और विकास। निरोध कौन करता है?

--रुद्र।

विकास कौन करता है?

--विष्णु।

एक विभाग निरोध का। एक विभाग विकास का। इस विभाग से निराई की जाय और उस विभाग से बोआई की जाय। अन्दर और बाहर दोनों जगह निरोध और विकास दोनों मिलकर काम पूरा होगा। इसलिए एक ही भगवान् दो रूप धारण करता है। ●

राम कृष्ण

आज के नाम हैं—'**राम कृष्ण**'। ये दोनों नाम हिन्दुस्तान में इतने प्रसिद्ध हैं कि उनके बारे में और क्या समझाया जाय! परन्तु उसमें बहुत समझ लेने जैसा है। हम रामकृष्ण सदैव कहते हैं। लेकिन वह अनेक बार तोते सरीखा होता है। एक बार क्या हुआ? हनुमान्‌जी पर सीतामैया प्रसन्न हुई और इनाम में उन्होंने उसे अपनी मोतियों की माला दे दी। आखिर हनुमान् कौन था? बन्दर ही। उसने क्या किया? वह माला का एक-एक मोती चबाने लगा। एक मोती चबाता, 'इसमें राम नहीं' कहता और फेंक देता। उसने सब मोती चबाकर देखे, परन्तु उनमें उसे राम नहीं दीखे। हनुमान् क्या करता था? वह हर बात में देखता था कि राम है कि नहीं। वैसे देखना सीखना चाहिए। खाने को रोटी मिली तो यह देखना चाहिए कि क्या इसमें राम है! यानी क्या करोगे? मान लो कि तुम्हें किसीने चोरी का माल खाने को दिया और तुम्हें पता है कि वह चोरी का माल है। तब क्या तुम वह खाओगे?

प्रत्येक बात में ऐसा विचार करना चाहिए। हनुमान् ने ऐसा ही विचार किया। राम यानी सत्य, खरापन, सचाई। प्रत्येक बात देखनी चाहिए, जाँचनी चाहिए।

कृष्ण यानी प्रेम। सुदामा कृष्ण का मित्र था। गरीब ब्राह्मण था। उसने कृष्ण को मुट्ठीभर तंदुल दिये। कृष्ण ने उन्हें खाया, प्रेम से स्वीकार किया। कृष्ण यानी प्रेम। राम यानी सत्य। राम ने सत्य के लिए वनवास स्वीकार किया। कृष्ण ने प्रेम के लिए अर्जुन के घोड़े धोये। और पहले हम 'बुद्ध' देख चुके हैं। बुद्ध यानी करुणा। बुद्ध ने करुणा का प्रचार किया। सत्य-प्रेम-करुणा, सत्य-प्रेम!!

[तालियाँ बजाकर बाबा गाने लगे। धीरे-धीरे बच्चों ने भी साथ दिया। सब गाने लगे।]

सत्य-प्रेम-करुणा
सत्य-प्रेम ॥
—सत्य-प्रेम-करुणा,
सत्य-प्रेम ॥

रहीम ताओ

कल हमने सारे भारत में विख्यात राम और कृष्ण इन दो नामों पर विचार किया। आज जिन दो नामों का विचार करनेवाले हैं, वे भारत के दो सिरों के नाम हैं। भारत के पश्चिम में अरबस्तान है और पूर्व में चीन है। 'ताओ' शब्द चीन का है और 'रहीम' शब्द अरबस्तान का है। दोनों परमेश्वर के नाम हैं।

मुसलमान ईश्वर को अल्ला, रहमान, रहीम कहते हैं। रहीम यानी रहम करनेवाला। रहम यानी दया। 'ईम' परमवाचक शब्द है। रहीम, करीम, हाकीम। हाकीम यानी बड़ा सयाना। वैद्य होते हैं न, उन्हें

हाकीम कहते हैं। क्योंकि वे ज्ञानी होते हैं। करीम यानी अतिशय उदार। रहीम यानी परम दयालु।

"बिस्मिल्ला हि र् रहमानि र् रहीमी"

यह उनका मंत्र है। इसका यह अर्थ है कि मैं अल्ला के नाम से शुरू करता हूँ। उत्सव करो, काम करो, प्रारम्भ में उसका नाम लेकर ही काम करो। क्या तुम यह मंत्र बोल सकोगे--

"बिस्मिल्ला हि र् रहमानि र् रहीमी"

[बच्चों से यह मंत्र बुलवाया। उच्चारण सिखाया। सबके द्वारा अच्छी तरह उच्चारण करने के बाद पाँच मिनट तक सबने मिलकर घोष किया।]

रहीमान यानी कृपालु।

'कृपाळु तो कनवाळु, स्तुति त्या देवाची' ऐसा है। कृपाळु यानी रहीमान। कनवाळु यानी रहीम। अधिक-से-अधिक कृपा!! अधिक-से अधिक करुणा!!

'ताओ' चीनी नाम है। परन्तु वह संस्कृत से निकला है। तन् यानी तानना। बुनाई के काम में ताना होता है। ताना यानी ताना हुआ। तन् यानी तानना, विकास करना। संस्कृत में पुत्र को तनय कहते हैं। यानी वंश विस्तार हुआ। देह को तनु कहते हैं। यानी आत्मा देह में व्यापक हुआ। ताओ यानी विश्वव्यापक परमात्मा। यानी सब ओर समान रूप से भरा हुआ। सघन भरा हुआ। अन्दर-बाहर, आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे सर्वत्र है। इसके सिवा तुममें हममें भी वह है। अर्थात् मध्य में भी है, यानी है ही है। समानता और व्यापकता की कल्पना 'ताओ' पर से आती है। ईश्वर विरल नहीं, घना है। घन वस्तु में है, पर पोली दीखनेवाली वस्तु में भी है। 'ताओ' यानी विश्वव्यापक और समानता से भरा हुआ।

एक है पूर्व की ओर और एक है पश्चिम की ओर। करुणा और

समानता में क्या सम्बन्ध है ? पूर्व की ओर समानता पर जोर है और पश्चिम की ओर करुणा पर जोर है। हिन्दुस्तान बीच में है। उसे करुणा चाहिए और समानता चाहिए। इसलिए हम सतत कहते हैं कि करुणा-मूलक साम्ययोग चाहिए। हमें साम्य की स्थापना करनी है, पर वह किस मार्ग से ? गरीबों की मदद करनी है और साम्य लाना है। एक ओर रहीम और एक ओर ताओ। और दोनों को जोड़नेवाले हम। ●

वासुदेव

वासुदेव नाम भागवत-सम्प्रदाय में चलता है। भागवत-सम्प्रदाय वैष्णव-सम्प्रदाय का ही एक प्रकार है, पर वह स्वतन्त्र है। वासुदेव की—और उसके भक्त को भी वासुदेव नाम देकर—उसकी भक्ति प्राचीन काल में चलती थी। कुछ लोग वासुदेव के भक्त और कुछ लोग अर्जुन के भक्त होते थे। उन्हें वासुदेवक और अर्जुनक कहते थे। अब अर्जुनक नहीं रहे। कालान्तर में वे वासुदेवकों में विलीन हो गये।

वह जो वासुदेव है, वह भागवत धर्म में भगवान् का मुख्य नामधारी है। भगवान् के अनेक नाम हैं। परन्तु भागवत धर्म में वासुदेव नाम प्रधान है। जो सारे विश्व में वास करता है, वह है वासुदेव। तुम्हारा निवास जैसे पवनार में है, वैसे वासुदेव का निवास सारे विश्व में है। **वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।** सारे विश्व को वासुदेव कहनेवाले सन्त दुर्लभ हैं।

यह वासुदेव शब्द कैसे बना ? देव यानी भगवान्। वासु यानी बसानेवाला। सबको आवास देनेवाला। ऐसा जो देव है, उसे वासुदेव कहते हैं। उसका उल्लेख ईशावास्योपनिषद् में है। "संसार में जो कुछ जीवन है, वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है।" यह संस्कृत का हिन्दी

अनुवाद है। मूल संस्कृत में 'ईशावास्यं इदं सर्वम्' ऐसी शुरुआत है। उस पर से वासुदेव शब्द आया। वह भागवत धर्म का संस्थापक है।

भारत में रामायण, महाभारत और भागवत तीन ग्रन्थ हैं। रामायण में राम-कथा है। भारत में कौरव-पाण्डव-कथा है। उसमें सारी भारत-भूमि का इतिहास है। इसलिए उसका नाम रखा भारत। और भागवत में कृष्ण-कथा है। उसमें वासुदेव का महत्त्व है।

गो-विश्वरूप

गो-विश्वरूप! गोरूप प्रभु और विश्वरूप प्रभु। संस्कृत भाषा में 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'गो' यानी वाणी। वह प्रभु की मनुष्य को अतुलनीय देन है। यह देन मनुष्य-सृष्टि को ही प्राप्त है, शेष सृष्टि को नहीं। पशुओं के वाणी नहीं होती। वे गले से कुछ आवाज निकालते हैं, पर वह वाणी नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को ऐसी यह अमूल्य देन दी है। कैसी है वह देन? रामदासस्वामी ने कहा है कि ब्रह्माण्ड-रचना से भी उत्तम शब्द-रचना है। क्योंकि ब्रह्माण्ड में जो वस्तु नहीं, वह भी शब्द में आयी है। जैसे 'मृगजल' शब्द। मृगजल प्रत्यक्ष में नहीं, वह भास है। रेगिस्तान में सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुआ भास। तो जो चीज प्रत्यक्ष नहीं, ब्रह्माण्ड में नहीं, वह शब्द में आयी। इस संसार में जितने रूप हैं, उन सबका ठीक ज्ञान वाणी से ही हो सकता है। अब कुछ ज्ञान हाथ से हो सकता है, कुछ पाँव से हो सकता है, कुछ कान से हो सकता है, कुछ आँखों से हो सकता है। इस प्रकार इन ज्ञान-कर्मेन्द्रियों द्वारा कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। परन्तु वाणी के बिना उनका स्पष्ट ग्रहण अशक्य है। ऐसी यह वाणी ईश्वर ने मनुष्य को दी। और वह ईश्वर का रूप है।

'गो' का दूसरा अर्थ है गाय। गोबर और मूत्र से लेकर दूध तक

सारे पदार्थ हमारे सामने रखकर गाय हमारी सेवा के लिए प्रस्तुत है। ऐसी यह गाय क्या ईश्वर का रूप नहीं है? गाय का रूप आँखों के सामने रखो। प्रत्यक्ष भगवान् गाय के रूप में हमारी सेवा कर रहा है। और इसीलिए हमें गाय की उत्तम सेवा करनी चाहिए।

'गो' का तीसरा अर्थ है भूमिमाता। यह भूमिमाता आज हम सबको धारण कर रही है। हमारा भार ढोती है और हमें धारण करती है। भगवान् गोरूप में हमारे सामने आता है—वाणी के रूप में, गाय के रूप में और भूमि के रूप में। इसलिए हमें वाणी का, गोमाता का और भूमाता का अच्छा उपयोग करना चाहिए और उनकी उत्तम सेवा करनी चाहिए।

ईश्वर का दूसरा नाम है विश्वरूप। यह एक भयानक नाम है। अभी तक हमारे द्वारा देखे हुए नामों जैसा यह नाम नहीं। भगवान् ने अर्जुन को विश्वरूप दिखाया और वह भयभीत हुआ। भगवान् के उस रूप में उसे सारा ब्रह्माण्ड दीखने लगा। उसे देखकर वह घबराया। यह सारा वर्णन गीता के ग्यारहवें अध्याय में है। मान लो कि अभी तुम यहाँ बैठे हो और यहाँ बैठे-बैठे पूर्वकाल में हो चुकी घटनाएँ, वर्तमानकाल में हो रही घटनाएँ और भविष्यकाल में होनेवाली घटनाएँ सब एक साथ तुम्हारे सामने दीखने लगें, तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी? तुम घबराओगे कि नहीं?

[सामने बैठे हुए बालकों से पूछा। वे हँसने लगे और बोले, 'हाँ, घबरा जायेंगे।']

यही हाल अर्जुन का हुआ और वह घबरा गया। इसलिए विश्व का जो भाग दृश्य है, वही हमारे काम का है। उतना ही हमारे लिए पर्याप्त है। उतने की ही सेवा करनी चाहिए। पर ईश्वर में सारा विश्व समाया हुआ है। सारे विश्व में वह व्याप्त है। इस प्रकार विश्व में जितने रूप हैं, वे सब भगवत्स्वरूप हैं और उनके अनेक नाम भी भगवत्स्वरूप हैं।

●

चित्-आनन्द

आज हम भगवान् के दो और नामों का विचार करें। कौन-से ?

—चिदानन्द हरि।

'चिदानन्द' में ही दो नाम हैं। वैसे दीखने में तो एक ही नाम दीखता है। पर वे दो नाम हैं। चित् और आनन्द। चित् यानी बोध, ज्ञान, चैतन्यशक्ति।

[पास बैठे हुए बालकों के मुँह के सामने अपना हाथ हिलाया। बालकों की आँखें मिचमिचाने लगीं।]

अरे! तू आँखें क्यों मीचता है ?

[दो-तीन बालकों पर ऐसा प्रयोग किया। उनसे भी पूछा, 'आँखें क्यों मीचते हो ?']

ये बालक आँखों के सामने हाथ हिलाने पर आँखें मीचते हैं। यह चैतन्य का लक्षण है। यह मक्खी देखो। यहाँ से उड़ी और वहाँ बैठी। वह पक्षी देखो। उड़ गया। एक सेकण्ड में पक्षी कितनी ही बार उड़ता है। यह सब चैतन्य का लक्षण है। पर वह पत्थर देखो। वह जहाँ पड़ा है, वहीं है। तुम उठाकर दूसरी ओर रखोगे तो ठीक, नहीं तो जहाँ है, वहीं पड़ा रहता है। उसमें चैतन्य प्रकट नहीं है। वह जड़ है।

आनन्द यानी सुख। सबको आनन्द चाहिए। सबको सुख चाहिए। आनन्द किससे होता है ? आम खाने से आनन्द होता है, पर वह आनन्द टिकनेवाला नहीं। आम के साथ ही वह भी समाप्त हो जाता है। परन्तु भगवान् का आनन्द शाश्वत है। वह कभी समाप्त नहीं होता। वही सच्चा आनन्द है। और वही उत्तम आनन्द है।

ज्ञानदेव महाराज कहते हैं, "आनन्दा आनन्द, प्रबोधा प्रबोध" प्रभु आनन्द का आनन्द है और चैतन्य का चैतन्य है। ऐसा यह चिदानन्द ईश्वर है। वैसे तो ईश्वर के तीन नाम हैं—सत्, चित्, आनन्द।

इनमें का सत् यानी सचाई, खरापन। इस नाम पर विचार हुआ है कि नहीं?

—हाँ।

कब, किस नाम के साथ?

—ॐ तत् सत्।

इसलिए यहाँ दो ही नाम हैं। चित् और आनन्द—चिदानन्द। पर वे नाम हैं सत्-चित्-आनन्द!

(ताल देते हुए घोष किया)

तुम भी कहो—सत्-चित्-आनन्द।

(बालक ताल देकर घोष करने लगे)

अरे! क्या यह घोष हुआ? मुझे तो कुछ सुनाई ही नहीं दिया।

—सत्-चित्-आनन्द।

अब थोड़ा सुनाई दिया। पर मैं तो बहरा हूँ। बहरा सुन सके, ऐसा घोष करना चाहिए।

(जोर-जोर से घोष हुआ)

हरि

[दोपहर से वर्षा हो रही थी। मन्दिर के सामने घाम नदी का रूप बदल गया था। और उसकी हमेशा की आवाज कई गुना बढ़ गयी थी। मन्दिर का सभा-मण्डप बहुत गीला हो गया था। खड़े-खड़े प्रार्थना हुई। काफी देर तक बाबा घाम नदी का रूप देखते रहे और फिर प्रवचन शुरू हुआ।]

आज का नाम है 'हरि'। 'हरि' अद्‌भुत नाम है। सारे भारत में राम-नाम के बराबर यही एक नाम है। ज्ञानदेव महाराज कहते हैं— **"एक नाम हरि। द्वैत नांव दूरी।"** एक हरि नाम लिया कि दूसरे नाम शेष ही नहीं रहते। सब नाम उस एक नाम में आ जाते हैं। यह एक नाम लिया कि बस।

हरि यानी सब माया का हरण करनेवाला। पाप, ताप, दुःख, रोग इत्यादि सब हरण करनेवाला हरि है। ज्ञानदेव महाराज ने हरिपाठ लिखा है। महाराष्ट्र में हरिपाठ सबको मालूम है। ब्राह्मणों की संध्या संस्कृत में है और उसमें भगवान् के २४ नाम हैं। पर संस्कृत में होने से सामान्य लोग उन्हें नहीं समझ सकते। सब समझ सकें, इसलिए ज्ञानदेव ने मराठी में हरिपाठ लिखा। वह हरिपाठ महाराष्ट्र में घर-घर पढ़ा जाता है। उसमें ज्ञानदेव ने लिखा है—**"हरि मुखें म्हणा हरि मुखें म्हणा पुण्याची गणना कोण करी।"** मुख से हरि बोलो, मुख से हरि बोलो तो पुण्य को कौन गिनेगा ? उसके बाद एकनाथ महाराज ने भी एक हरिपाठ लिखा है। उसमें वे कहते हैं—

"हरि हरि बोला, नाहीतरी अबोला।
वृथा गलबला करू नका ॥

'हरि-हरि बोलो, नहीं तो चुप बैठो। व्यर्थ होहल्ला मत करो।' इस प्रकार हरि-नाम की महिमा सबने गायी है।

ऐसा ही हरि-नाम का घोष बंगाल और उड़ीसा प्रान्त में होता है। वहाँ कहते हैं—**'हरि बोल हरि बोल'**। दक्षिण के कुछ प्रान्तों में राम-नाम का घोष चलता है। वहाँ 'राम जपु, राम जपु' चलता है। हमने दोनों का समन्वय कर 'हरे राम' किया। वैसे हम तीन नाम लेते हैं— 'जयजय राम कृष्ण हरि'।

[ऐसा कहते-कहते धीरे-धीरे पाँव हिलने लगे, ताल लगने लगे। और उसे नृत्य का स्वरूप आने लगा। थोड़े ही समय में सभी लोगों की आवाज भी बाबा

की आवाज में मिली। कुछ ठहरकर बाबा ने बालकों से पूछा, क्यों तुम्हें नाचना आता है कि नहीं ? फिर क्या ? सबने नृत्य में भी साथ दिया। 'जयजय राम कृष्ण हरि' के घोष से मन्दिर गूँजने लगा। सारे लोग नाम-संकीर्तन में तल्लीन हो गये।]

अद्वितीय

'अद्वितीय तू'। अद्वितीय यानी क्या ? भगवान् के बराबर दूसरा कोई नहीं है। भगवान् यानी भगवान् ही। उसकी बराबरी कौन करेगा ? चाहे बड़ा मनुष्य हो, महापुरुष हो, बलवान् राजा हो कि बड़ा पहाड़ हो, भगवान् की बराबरी कोई नहीं कर सकता। ईश्वर के समान ईश्वर ही है। हम उसके भक्त हो सकते हैं, पर उसकी बराबरी नहीं कर सकते। एक ही ईश्वर सारी सृष्टि सँभालनेवाला, सारी सृष्टि उत्पन्न करनेवाला और सृष्टि को लीन करनेवाला है। वैसा दूसरा कोई नहीं।

यह कोई भी मान्य करेगा कि हमें ईश्वर की सेवा करनी चाहिए, उसकी बराबरी नहीं। पर अद्वितीय का अर्थ यह है कि एक ईश्वर का नाम लेने पर गिनने के लिए कोई वस्तु बचती ही नहीं। मान लो, यहाँ के बच्चों को गिनने लगे। राम एक, कृष्ण दो, गोविन्द तीन, हरि चार—चार नाम हुए, और भी होंगे। पर हम ईश्वर की गिनती करने लगें और ईश्वर का नाम गिनने लगें। एक ईश्वर, दो पहाड़, तीन पेड़, चार नदी, तो वैसे गिन नहीं सकेंगे। एक ईश्वर गिना कि दूसरे नाम शेष नहीं रहते। इसलिए अद्वितीय का अर्थ ऐसा है कि एक ईश्वर गिन लेने पर बाकी सब उसके पेट में आ जाते हैं। हम ऐसा नहीं गिन सकते कि एक हिन्दुस्तान, दो पवनार, तीन नागपुर। ये हिन्दुस्तान के पेट में आते हैं। वैसे ही यह पेड़, यह नदी, पहाड़, मनुष्य, पशु-पक्षी सब ईश्वर के पेट में आते हैं। इसलिए ईश्वर का एक नाम लिया कि दूसरे नाम गिनने

के लिए बचते ही नहीं। गिनना ही हो तो ईश्वर को एक ओर रखो और फिर गिनती करो। एक, दस, सौ, हजार, लाख, करोड़, दस करोड़ गिनो, अरब गिनो, खर्व की गिनती करो, निखर्व गिनो। पर ईश्वर का नाम लिया तो केवल एक ईश्वर और दो कोई नहीं। यही ज्ञानदेव ने कहा—**'एक नांव हरि, द्वैत नांव न उरी'**। एक नाम हरि, द्वैत नाम शेष नहीं। तो अद्वितीय का अर्थ क्या हुआ ?

एक हरि का नाम लेने पर दूसरा शेष नही रहता, इस अर्थ से अद्वितीय और एक ईश्वर कहने पर दूसरा गिनने को बाकी नहीं रहता, इस अर्थ से अद्वितीय।

मान लो, एक अनार है। उसमें दाने हैं। इस अनार में ५० दाने हैं। इस अनार में ५० दाने, उस अनार में १०० दाने। ऐसा गिन सकेंगे। पर अनार गिन लेने पर—एक अनार, दो दाने, तीन छिलका, ऐसा क्या गिना जायगा ?

—नहीं, ऐसा नहीं गिना जा सकता।

बहुत-से लोग कहते हैं, ठाकुरजी की मनौती करेंगे, हनुमान्‌जी को पेड़े चढ़ायेंगे, काली की मानता करेंगे। ऐसे हम पचास नाम लेते हैं, यह ठीक नहीं है। ईश्वर के साथ ये नाम लिये नहीं जा सकते। इसलिए ईश्वर का यह 'अद्वितीय' नाम है।

यह नाम उपनिषद् में आया है—**'एकमेवाद्वितीयम्'** एक वही एकमेव अद्वितीय है। बैल के दो सींग होते हैं, पर गैंड़े के एक ही सींग होता है। वैसा ईश्वर एकमेव अद्वितीय है।

'एकमेवाद्वितीयम्', 'एकमेवाद्वितीयम्'।

[बालकों से कहा—'बोलो रे'—बच्चे बोलने लगे। पर उच्चारण ठीक नहीं होता था। फिर एक-एक से बुलवाया। उच्चारण सिखाया। सबने मिलकर पाँच-दस मिनट घोष किया और सभा समाप्त हुई।]

●

अकाल

अकाल यानी जिसे काल लागू ही नहीं होता। बाकी सब पर काल लागू होता है। जानवर आदि प्राणी ५० वर्ष तक जीते हैं। मनुष्य अधिक-से-अधिक १०० वर्ष जीता है। वृक्ष २००-३०० वर्ष तक रहते हैं। ये पहाड़ आदि अनेक वर्षों से वहाँ स्थित हैं। हमारी पृथ्वी कितने वर्षों की है, क्या तुमको मालूम है ?

—नहीं।

दो सौ करोड़ वर्षों की है। वह और दो सौ करोड़ वर्ष तक रहेगी। पर दो सौ करोड़ वर्षों बाद क्या होगा ? हम समझते हैं कि दो सौ करोड़ वर्ष यानी बहुत अधिक वर्ष। परन्तु पृथ्वी को भी कभी तो काल ले जानेवाला है। आकाश में नक्षत्र हैं। वे भी ठंढे होंगे। सूर्य है। वह भी धीरे-धीरे ठंढा होनेवाला है। ठंढा होते-होते बिलकुल ठंढा हो जायगा। फिर उस पर मनुष्य रहेंगे। मनुष्य आबाद होंगे। उनके कार्यक्रम शुरू होंगे और फिर और ठंढा होते-होते वह नामशेष हो जायगा। इस प्रकार इस काल के पेट में एक-एक चला जा रहा है। सब पर काल लागू है। ऐसा कौन है, जिस पर काल लागू नहीं ?

—ईश्वर।

ईश्वर पर काल लागू नहीं। इसलिए उसका नाम रखा गया 'अकाल'।

कभी न कभी तो काल हमें खाने के लिए आनेवाला है। वह तुम्हें और मुझे दोनों को खा जायगा। मानो कि अभी काल खाने के लिए आ गया। उस समय हम क्या करें ? हमें कहना चाहिए—

'काळ देहासी आला खाऊ। आम्ही आनंदे नाचूं गाऊ॥'

काल देह को खाने आया। हम आनंद से नाचेंगे, गायेंगे।

(दो-तीन बार सुस्वर से गाकर दिखाया ।)

काल हमारी देह को खाता है, हमें नहीं । इसलिए हम उस समय आनंद से नाचेंगे । क्यों रे ! तुम क्या करनेवाले हो ? 'अब मैं मरता हूँ' ऐसा कहकर रोनेवाले हो क्या ?

—नहीं ।

(बच्चे हँसने लगे)

पर मानो कि बीमार हो गये, अन्त में साँस रुकने लगी । तो कैसे नाचोगे और गाओगे ? इसलिए शरीर को सँभालना चाहिए । बीमार नहीं पड़ना चाहिए । अन्तिम घड़ी में नाचना आना चाहिए । नाचते-नाचते मनुष्य मर गया, ऐसा होना चाहिए ।

यहाँ पर एक भाई इस तरह मर गया । उनका नाम था शिवरामपंत बाबाजी । यहाँ मकान का काम चल रहा था । वहाँ वे खड़े-खड़े सूचना देते थे । बोलते-बोलते गिर पड़े और चल बसे । खड़े-खड़े ही मर गये । रोग वगैरह कुछ नहीं । ऐसा होना चाहिए । तो अन्तिम घड़ी में 'आनंद से नाच सकेंगे' ऐसा हुआ तो हम भी अकाल बनते हैं । पर आज ईश्वर ही अकाल है ।

भगवान् का अकाल नाम सिख लोग लेते हैं । सिख लोग पंजाब में रहते हैं । आज यहाँ एक सिख सज्जन आये हैं ।

[एक सिख सज्जन बाबा से मिलने आये थे । सभा में वे भी बैठे थे । उन्हें पास बुलाकर खड़े रहने को कहा । वे खड़े रहे ।]

सिख लोग कैसे होते हैं, यह देख लो । ये सिख लोग सब जगह रहते हैं । उद्योग-धंधे के लिए वे सब तरफ जाते हैं । बम्बई, नागपुर, वर्धा सर्वत्र वे दिखाई देंगे । पंजाब में वे बहुत हैं । सिख लोग भगवान् का 'अकाल' नाम लेते हैं । वे केवल अकाल नहीं कहते । वे कहते हैं—'सत् श्री अकाल' ।

[सिख सज्जन से 'सत् श्री अकाल' का घोष करके दिखाने की प्रार्थना की । उन्होंने दो-तीन बार कहकर बतलाया । बालकों ने भी उनका साथ दिया ।]

सत् और श्री नाम का हमने शुरुआत में ही विचार किया है। आज 'अकाल' पर विचार किया। ये तीनों नाम वे एक साथ लेते हैं।

सिखों के गुरु हो गये हैं। उनका नाम नानक है। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। उसका नाम है 'जपुजी'। जैसे महाराष्ट्र में ज्ञानदेव का हरिपाठ है, वैसे सिखों का जपुजी है। वह किताब सिख लोग रोज पढ़ते हैं। उसका मैंने हिंदी में अर्थ लिखा है। यानी उस पर मेरे व्याख्यान हुए थे। उन्हें एकत्र कर एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की गयी। ये सज्जन उस पुस्तक की हजार प्रतियाँ मुफ्त बाँटनेवाले हैं। आज ही वे मुझसे मिलने आये और आज ही 'अकाल' नाम आया। देखो, ईश्वर की करनी कैसी है। सिख लोग भगवान् को वायगुरू भी कहते हैं—'वायगुरू वायगुरू सत् श्री अकाल'।

[सबने मिलकर घोष किया। सिख सज्जन भी उनमें थे ही। बालक निःसंकोच रूप से उनके समान उच्चारण करने का प्रयत्न कर रहे थे।]

निर्भय

[आज आषाढ़ी एकादशी थी। पवनार गाँव के लोग आश्रम में आये। भरत-राम का दर्शन किया। मन्दिर की प्रदक्षिणा की। बाबा को प्रणाम किया और भजन गाते हुए लौटे।]

आज आषाढ़ी एकादशी है। पंढरपुर में वह कमर पर हाथ रखकर खड़ा है। लाखों लोग आज वहाँ पहुँचे होंगे। हमारे यहाँ इस गाँव के लोगों ने भी आश्रम में आकर आश्रम की प्रदक्षिणा की। हमारे यहाँ ऐसा रिवाज है। आज लोग पंढरपुर जाते हैं। विठोबा के मंदिर में जाते हैं और वहाँ हरि-नाम का कीर्तन करते-करते प्रदक्षिणा करते हैं। वैसे ये लोग यहाँ आये थे।

पर मेरे सामने प्रश्न है कि ईश्वर पर इतनी श्रद्धा है तो क्या उससे निर्भयता आयी है? जिनकी ईश्वर पर श्रद्धा होती है, वे निर्भय होते हैं। तुकाराम ने कहा है—'**हरीचिया भक्ता, नाहीं भय चिन्ता**'। यह हरिदास का लक्षण है कि उसे न तो भय होता है और न चिन्ता। इसलिए ऐसा अनुभव आता है क्या कि यदि ईश्वर पर श्रद्धा है तो मनुष्य निर्भय है? हममें भय है तो क्या हम ईश्वर का श्रद्धापूर्वक नाम लेते हैं?

ईश्वर-भक्त को भय किसका? रक्षा के लिए परमेश्वर है, तो भय क्यों? '**मातेचिया खांदी बाळ नेणे भीण।**' माता पर श्रद्धा है, इसीलिए बालक माता के कंधे पर निर्भयता से सोता है। वैसे ही ईश्वर पर श्रद्धा है, तो निर्भयता होनी चाहिए। निर्भयता ही भक्ति है।

भक्ति से निर्भय होंगे, ऐसी अपेक्षा है। वैसा नहीं होता, इसलिए वह भक्ति नहीं। वह ढोंग नहीं है, पर वह भक्ति काल्पनिक है। वह जड़ श्रद्धा है, विवेकयुक्त भक्ति नहीं। इसलिए हमको निर्भयता का अभ्यास करना चाहिए। निर्भयता के अभ्यास से ईश्वर-भक्ति आयेगी। अर्थात् उलटा प्रकार होगा। ईश्वर-भक्ति से निर्भयता यह एक प्रयोग और निर्भयता से ईश्वर-भक्ति यह दूसरा प्रयोग। हम यह दूसरा प्रयोग करके देखें।

ईश्वर निर्भय है। उसका हमें क्या उपयोग? हम ईश्वर के गुण ग्रहण करेंगे, ईश्वर के गुणों का हम अभ्यास करेंगे।

ईश्वर को निर्भय विशेषण सिख लोगों ने दिया। '**निरभउ निरवैरु**' ऐसा कहा है। इसलिए सिख जमात अधिक निर्भय है, यह हमें मान्य करना चाहिए। इसीलिए यह नाम नाम-माला में लिया है। 'हे परमेश्वर, तू निर्भय है, तो तेरे गुणों का अभ्यास कर हम भी निर्भय होंगे' ऐसा कहा है। आपस में झगड़ा नहीं करेंगे, प्रेमपूर्वक बर्ताव करेंगे, एक-दूसरे की सेवा करेंगे, सत्य बोलेंगे। फिर हमें किसका भय? जो सत्य नहीं बोलता, ईश्वर की भक्ति नहीं करता, उसे भय होता है।

आत्मलिंग शिव

अब भगवान् के अंतिम दो नाम बचे हैं—'आत्मलिंग' और 'शिव'। ये दोनों नाम शैव लेते हैं। शिवोपासक यानी शिव-भक्त दोनों ही नामों का उपयोग करते हैं।

'आत्मलिंग' नाम का ज्ञानेश्वरी में उल्लेख है। आत्मलिंग यानी आत्मा का चिह्न, ऐसा स्थूल अर्थ होता है और आत्मा ही चिह्न (पहचान) है, ऐसा भी अर्थ होता है। परमेश्वर की पहचान कहाँ होती है ? सामने मूर्ति है, तो हम समझते हैं कि यह ईश्वर का चिह्न है और ऐसा समझकर हम उसे नमस्कार करते हैं। मूर्ति हमने ही बनायी, हमने ही उसकी स्थापना की और हम ही उसकी पूजा करते हैं। पर हम कहते हैं कि ईश्वर सर्वसृष्टिकर्ता है। यानी मूर्ति को ही हमने ईश्वर का चिह्न बनाया।

पर ईश्वर की सबसे निकट की पहचान कौन-सी है ? आत्मा। यहाँ अन्दर (छाती पर अँगुली रखकर) वीणा बज रही है। हमारा यह सिर तुंबा है और हृदय में वीणा है। यह जो श्वास चल रहा है, वह वीणा की आवाज है। प्रत्येक श्वास के साथ वीणा बजती है। वह ईश्वर का चिह्न है। लिंग यानी चिह्न। आत्मा ही ईश्वर का चिह्न है। इसलिए शैवों ने ईश्वर को आत्मलिंग नाम दिया। उसकी पहचान यही है। परमात्मा कहाँ है, ऐसा पूछें तो वह सर्वत्र है। पर राम की मूर्ति में विशेष है और उसकी अपेक्षा विशेष यहाँ (हृदय में) है।

पर वह पहचानने में नहीं आता। गठरी बँधी हुई है, तो क्या भीतर का हीरा दिखाई देगा ?

—नहीं दीखेगा।

वैसे ही यह हाड़-मांस की गठरी है। उसके अन्दर हीरा छिपा होने से वह दीखता नहीं। लोग कहते हैं, 'छाती पर हाथ रखकर बोल' फिर

मनुष्य छाती पर हाथ रखता है। और छाती पर हाथ रखा यानी सत्य बोलता है। क्योंकि अन्दर ईश्वर है। वह कहता है, 'अरे! सत्य बोल।' इसलिए परमेश्वर की पहचान का चिह्न आत्मा है।

इसके आगे का नाम 'शिव' है। शिव यानी कल्याण, मंगल। ये लोग प्रतिदिन 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करते हैं। उसमें 'शिव' नाम है।

'**ॐ नमः शिवाय**' ऐसा मंत्र है। यानी शिव को नमस्कार हो। यह शिव वेद में भी आता है। '**शिवाय शिवतराय च।**'

यहाँ यह नाम-माला समाप्त हुई। उसे अब प्रेम से कहते जाओ। सोने के पहले कहना और माता की गोद में सोते हैं, वैसे ही ईश्वर की गोद में सोना। अब हम 'ॐ नमः शिवाय' का जप करेंगे।

[बाबा बोल रहे थे। बच्चे कह रहे थे। पहले धीरे-धीरे जप किया। फिर जोर-जोर से घोष किया।]

अभी हमने क्या किया? मन में कहा, उसे मानसिक जप कहते हैं।

(आँखें मूँदकर जप किया।)

अब मैं उपांशु जप करता हूँ। सुनाई नहीं पड़ना चाहिए, पर शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। यानी पुटपुटाने जैसा बोला जाय। होंठ हिलेंगे, पर आवाज नहीं।

(करके दिखाया)

अब मैं घोष करता हूँ। जोर से बोले कि घोष हुआ।

(बोलकर बतलाया)

जप, उपांशु, घोष। अब तुम करके बताओ।

[दो-तीन बच्चों से करवाया। फिर सबने मिलकर जप, उपांशु और घोष किया और सभा विसर्जित हुई।]

—ॐ नमः शिवाय—

●

सर्व-धर्म-स्मरण

ॐ तत् सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू ।
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू ।।
ब्रह्म मज्द तू, यह्व शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू ।
रुद्र विष्णु तू, राम कृष्ण तू, रहीम ताओ तू ।।
वासुदेव गो-विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू ।
अद्वितीय तू' अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू ।।

१

इन तीन श्लोकों में छत्तीस नामों की एक नामावली है। यह एक नयी चीज है। इसका आरम्भ जान लेना चिन्तन के लिए लाभदायी है।

मैं बरसों से भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की उपासना करता रहा हूँ। जिस समय जिस धर्म की उपासना की, उस समय उस-उस धर्म के खास-खास नामों का चिन्तन करता रहा। कुरान में अल्लाह के अनेक नाम आते हैं, उन सबमें गुणवाचक रहमान या रहीम मुख्य है। वैसे ही चीनी तत्त्वज्ञान का मन्थन करने पर ताओ शब्द मिलता है। इस तरह कई धर्मों की और संस्कृतियों की उपासना समय-समय पर मेरे मन में चलती रही। लेकिन इस वक्त जब मैं हृषीकेश से हरिद्वार जा रहा था, तब रास्ते में काली कमलीवालों ने मुझे चन्दन की एक मणिमाला भेट दी। अकसर इस तरह की माला का उपयोग मैंने बहुत कम किया है। तकली

और चरखे ने मुझे माला का काम दिया है। उससे मेरी एकाग्रता तुरन्त हो जाती है। फिर भी जब उन्होंने माला दे दी, तो रात को सोते वक्त मैं वह अपने पास रख लेता था। साथ-साथ कुछ चिन्तन भी चलता रहा। उसके तीन श्लोक बन गये। परन्तु प्रभु के गुण अनन्त हैं, इसलिए उसके नाम भी अनन्त हैं। भक्त-जनों को जो प्रिय हो हैं, उनमें से कुछ नाम चुन लिये हैं। उसकी खूबी यह है कि उसमें सभी धर्मों का समावेश हुआ है। हिन्दू-धर्म के बहुत सारे पन्थों का निर्देश भी हो गया है। सब मिलकर नाम-स्मरण का एक सुश्लिष्ट भजन बना है।

इस नाम-माला से मुझे समाधान हुआ है और यह अब मेरी सायं-प्रातरुपासना का भाग बन गया है।

२

ॐ **तत् सत्**—इन तीन शब्दों में वेदों का सार आता है। भगवद्-गीता के सत्रहवें अध्याय में उसका जिक्र आया है।

ॐ तत् सत् के बाद श्री पद है। श्री शब्द लक्ष्मी का वाचक है, यानी श्रम का प्रतीक है। श्रम से होनेवाली पैदावार श्री है। सृष्टि में सर्वत्र जो शोभा दिखाई देती है, उस सबका सूचन श्री से मिलता है। सत् श्री एक कर दें तो सिखों का उपास्य मंत्र बन जाता है।

नारायण—नरसमुदाय की देवता है। वह सर्वभूतान्तर्यामी है। परन्तु विशेषतया मनुष्यों के लिए प्रस्तुत किया गया है।

पुरुषोत्तम—सब पुरुषों में उत्तम, रागद्वेषरहित, जो आदर्श गीता के पन्द्रहवें अध्याय के अन्त में बताया गया है।

गुरु—पन्थप्रदर्तक। इसलाम, ईसाई धर्म, सिख धर्म—सब गुरुपन्थ हैं। क्योंकि ये धर्म विशिष्ट गुरु के नाम पर प्रचलित हुए हैं। हिन्दू-धर्म में भी गुरु-प्रथा है, यद्यपि हिन्दू-धर्म गुरु-पन्थ नहीं कहा जायगा।

गुरु दत्तात्रेय का एक विशिष्ट सम्प्रदाय है। उसका भी स्मरण इसमें संगृहीत है।

नारायण, पुरुषोत्तम, गुरु—ये तीनों एकत्र करने से एक महान् आदर्श चिन्तन के लिए मिलता है।

सिद्ध, बुद्ध—जो जान गया और जो जाग गया। इन दो शब्दों से यथाक्रम जैन और बौद्ध आदर्शों का स्मरण हो जाता है।

स्कन्द—दोष-स्कन्दन, दोष-निर्दलन करनेवाला देवता, ब्रह्मचारी, कुमार, प्रसिद्ध देवसेनानी।

विनायक—गणपति, समुदाय का देवता। किसी भी काम के आरम्भ में विनायक-स्मरण यानी गणपति-स्मरण किया जाता है। सबका जो विशेष नायक, वह विनायक।

सविता पावक—प्रेरणा देनेवाला और पावन करनेवाला। सविता से सूर्य का स्मरण होता है, पावक से अग्नि का। सविता परमेश्वर की कृपा है। अग्नि के निर्माण में हमारा भी हाथ है। पारसियों में अग्नि की और वैदिकों में सूर्य और अग्नि दोनों की उपासना चलती है।

ब्रह्म—बृहत्, व्यापक तत्व, निर्गुण, निराकार, जिसमें से यह सारी सृष्टि अंकुरित होती है, जिसके आधार पर रहती है और जिसमें लीन होती है।

मज्द—अहुर मज्द। अहुर यानी असुर। पारसियों में परमेश्वर की संज्ञा। वेदों में असुर का अर्थ परमेश्वर होता है। मज्द यानी महान्।

यह्व—यानी जुहोवा। यहूदियों का आराध्य देवता। वह भी मूलतः वैदिक शब्द है।

शक्ति—परमेश्वर की प्रेम-स्वरूप में उपासना करनेवाले 'भक्त' कहलाते हैं। वैसे समाज-रचना की चिन्ता करनेवाले 'शाक्त' कहलाते हैं, जो ईश्वर की शक्ति-स्वरूप में उपासना करते हैं।

ईशु-पिता—परमेश्वर जगत्पिता तो है ही, लेकिन विशेष अर्थ में वे भक्त-पिता हैं। भक्तों के प्रतिनिधि के तौर पर ईशु का नाम लिया है। ईशु-पिता में भक्त और भगवान् दोनों का स्मरण होता है।

प्रभु—प्रभावशाली परमेश्वर, लोकस्वामी।

रुद्र—संसाररूपी पाशों में जकड़कर रुलानेवाला और कठिन साधना के बाद संसार-पाश से छुड़ानेवाला। संहारदेवता भी यह है।

विष्णु—विश्व का पालन करनेवाला विश्वव्यापक भगवान्।

रुद्र-विष्णु—शैव और वैष्णव भक्तों के उपास्य संकेत हैं।

राम-कृष्ण—सत्य और प्रेम के प्रतीक। राम-कृष्ण की सम्मिलित उपासना हमारे यहाँ सारे देश में चलती ही है।

रहीम—जो अत्यन्त दयामय है। शान्ति-परायण इसलाम का स्मरण। अल्लाह का गुण-विशेषण।

ताओ—चीनी सन्त लाओत्से का परम मन्त्र। ताओ यानी परमात्मा, ज्ञान-स्वरूप। मूल तनु धातु पर से हो सकता है। तनु पर से ताय और तायी शब्द संस्कृत-साहित्य में आते हैं। गौडपाद की कारिका में उसका उल्लेख है। उससे मिलता-जुलता यह चीनी शब्द है। चीनी लोगों की संस्कृति का सूचक यह शब्द है।

वासुदेव—गीता में वासुदेव भगवान् के लिए प्रयुक्त है। वासुदेवः सर्वम्, ईशावास्यमिदं सर्वम्, ये वचन प्रसिद्ध हैं। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—यह द्वादशाक्षरी वेदमंत्र वैष्णवों का प्राण है।

गो-विश्वरूप—यानी गोरूप और विश्वरूप।

विश्वरूप का दर्शन वेद, उपनिषद् और गीता में मिलता है। विश्वरूप कहने पर गोरूप कहने के लिए अवकाश नहीं रहता है, क्योंकि विश्वरूप में सब कुछ आ जाता है। फिर भी गो यानी वाणी, अर्थात्

विश्व-प्रकाशक शक्ति का विश्वरूप से पृथक् स्मरण अभीष्ट है। गो शब्द गोरक्षणी उपासना भी सूचित करेगा।

चिदानन्द—चैतन्य और आनन्द आत्मस्वरूप-दर्शन के शब्द हैं। सत् जोड़ने से सच्चिदानन्द हो जाता है। सत् का संग्रह पहले ही ॐ तत् सत् में आ गया है।

अद्वितीय—एकं सत्। एकमेवाद्वितीयम्। ला इलाह इल्लल्लाह।

अकाल—जो कालातीत है, काल का भी काल है। सत् श्री अकाल—यह सिखों का उद्घोष है।

निर्भय—निर्भयता सद्गुण-सेना का सेनापति है। गीता ने दैवी सम्पत् के गुणों में इसे प्रथम स्थान दिया है। 'गीते, भवद्वेषिणीम्' का मैंने मराठी में 'भयद्वेषिणी' किया है। भक्तों के लिए काल-भैरव भी अकाल-निर्भय बन जाते हैं।

आत्मलिंग—आत्मा ही जिसकी पहचान है। आत्मा से बढ़कर ईश्वर की कोई निशानी हमारे लिए हो नहीं सकती।

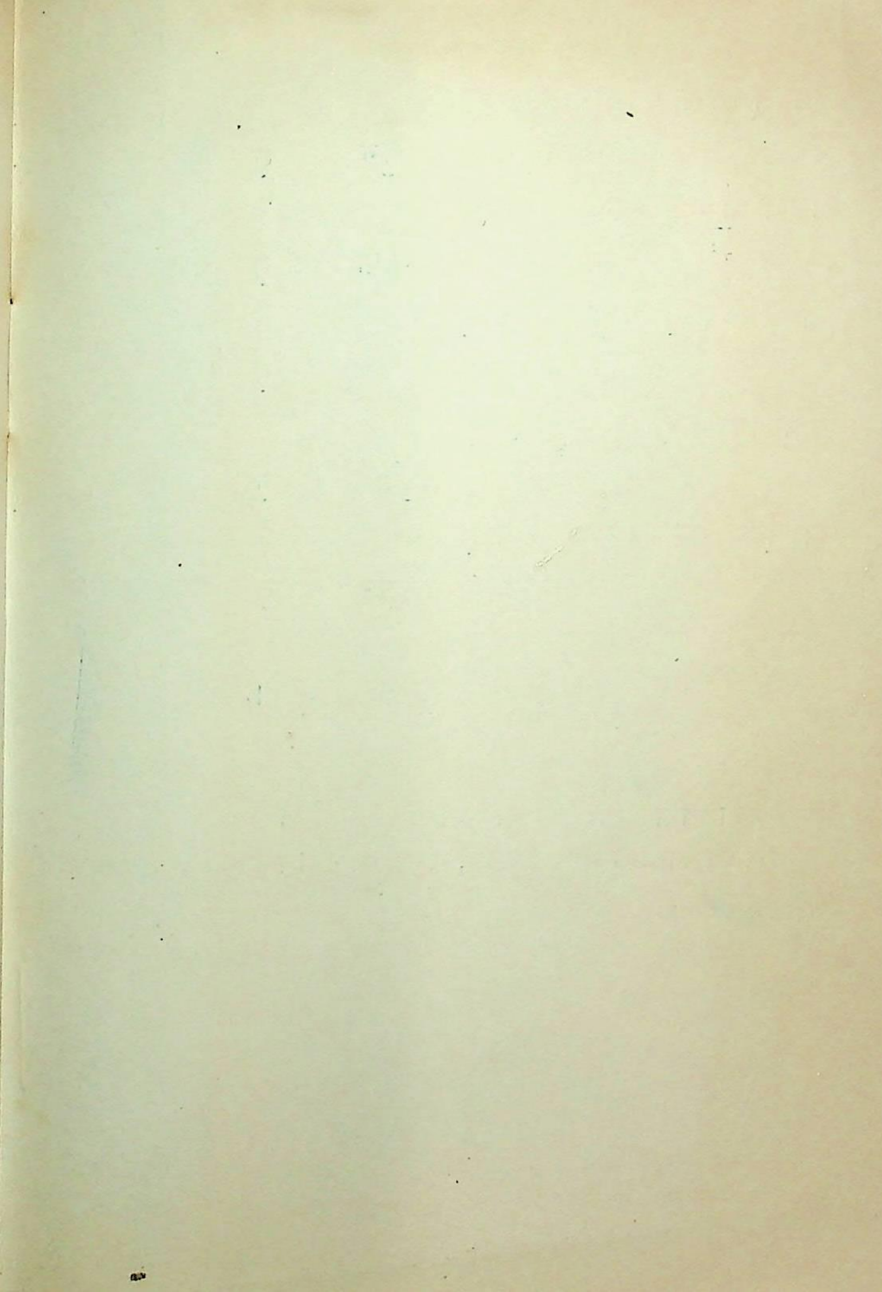
लिंग शब्द से शैवों (लिंगायतों) की विशिष्ट उपासना का अनायास स्मरण होता है।

शिव—परम मंगल। नमः शंभवाय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च।

—'**सर्वोदय**' **जून १९५२ से**

●

मुद्रकः जायसवाल आफसेट, महामृत्युञ्जय रोड, हरतीरथ, वाराणसी।



ऊँतत् सत् श्रीनारायण तू
पुरुषोत्तम गुरु तू
सिद्ध बुद्ध तू स्कंद विनायक
सविता पावक तू
ब्रह्म मज्द तू यह्व शक्ति तू
ईशु - पिता प्रभु तू
रुद्र विष्णु तू राम कृष्ण तू
रहीम ताओ तू
वासुदेव गो - विश्व रूप तू
चिदानन्द हरि तू
अद्वितीय तू अकाल निर्भय
आत्मलिंग शिव तू ॥

विनोबा द्वारा तैयार इस नाम-माला की विनोबा द्वारा ही की गयी सरल सुबोध, सरल व्याख्या !

